दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

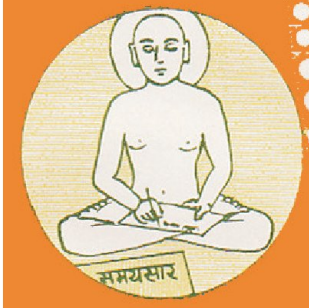

यह दुर्लभ मनुष्यपर्याय प्राप्त करके
जो जीव विषयों में रमते हैं, वे राख की
प्राप्ति के लिए रत्न को जलाते हैं।
— पूज्य स्वामीजी

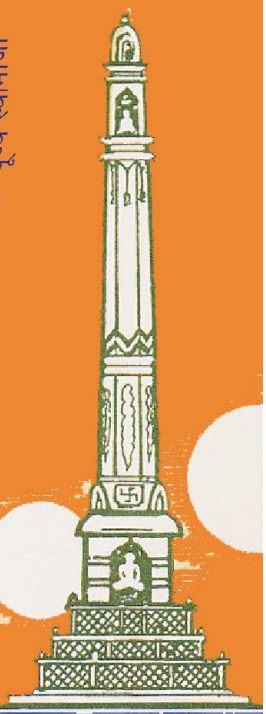

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३५ : अंक ७ [४१५] जनवरी, १९८०

आत्मधर्म [४१५]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ राचि रह्यो पर मांहि.....
२ क्रमबद्धपर्याय : कुछ प्रश्नोत्तर
३ वास्तव में भगवान की.....
[समयसार प्रवचन]
४ जैसे सिद्ध वैसे ही संसारी
[नियमसार प्रवचन]
५ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
६ ज्ञान-गोष्ठी
७ समाचार दर्शन
८ पाठकों के पत्र

शुद्ध दृष्टिवान आसन्नभव्य जीव को अपने अंतर में शुद्ध कारणपरमात्मा ही उपादेय है; उसमें सहज सुख का सागर उछलता है। ऐसे उत्तम सारभूत स्वतत्त्व में अपनी बुद्धि को लगाओ।

—पूज्य स्वामीजी

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१५] अंक : ७

राचि रह्यो पर मांहिं, तू अपनो रूप न जानै रे।
अविचल चिनमूरत बिनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे।
राचि रह्यो० ॥१॥

तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे।
ये पर, इनहिं वियोग-योग में, यौं ही सुख-दुःख मानै रे॥
राचि रह्यो० ॥२॥

चाह न पाये, पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे।
विपतिखेत विधिबन्धहेत पै, जान विषय-रस खानै रे॥
राचि रह्यो० ॥३॥

नरभव जिनश्रुत श्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे।
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवौ सुगुरु बखानै रे॥
राचि रह्यो० ॥४॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

आत्मार्थी की अभिलाषा

आत्मार्थी को सम्यग्दर्शन से पूर्व स्वभाव समझने की इतनी तीव्र रुचि होती है कि श्रीगुरु के निकट स्वभाव का श्रवण करते ही उसे ग्रहण करके आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है, आत्मा में परिणमित हो जाता है। अहो! श्रीगुरु ने मेरा ऐसा स्वभाव बतलाया। .... इसप्रकार गुरु का उपदेश उसके आत्मा को स्पर्श कर लेता है।

जिसप्रकार कोरे घड़े पर पानी की बूंद गिरते ही वह चूस लेता है, अथवा दहकता हुआ लाल लोहा पानी की बूंद को चूस लेता है; उसीप्रकार दु:ख से अति संतप्त आत्मार्थी जीव श्रीगुरु का उपदेश मिलते ही उसे चूस लेता है अर्थात् उसे तुरंत ही आत्मा में परिणमित कर लेता है।

आत्मार्थी को स्वभाव की जिज्ञासा और आकांक्षा इतनी उग्र होती है कि 'स्वभाव' का श्रवण करते ही वह एकदम हृदय में उतर जाता है।

अरे! 'स्वभाव' कहकर ज्ञानी क्या बतलाना चाहते हैं?—वही मुझे ग्रहण करना है। इसप्रकार रोम-रोम में स्वभाव का उत्साह जागृत होता है और वीर्य का वेग स्वभाव की ओर ढल जाता है। ऐसा पुरुषार्थ जागृत होता है कि स्वभाव को प्राप्त कर ही लेता है—जबतक उसकी प्राप्ति न हो, तबतक चैन नहीं पड़ता।

ऐसी दशा हो तब आत्मा की सच्ची अभिलाषा कही जाती है।

पूज्य कानजीस्वामी

आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७५, नवंबर १९५९, पृष्ठ ३१८

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | कुछ प्रश्नोत्तर

[गतांक से आगे]

(१३) प्रश्न - यदि ऐसा मानें तो क्या हानि है कि केवली के ज्ञानानुसार सब-कुछ क्रमबद्ध है और हमारे ज्ञानानुसार अक्रमबद्ध, क्योंकि केवली को भविष्य का ज्ञान है और हमें नहीं ? ऐसा मानने से अनेकांत भी सिद्ध हो जाता है।

उत्तर - हमारे मानने से वस्तु का स्वरूप दो प्रकार का थोड़े ही हो जावेगा, वह तो जैसा है, वैसा ही है; और हमें भी तो उसे वैसा ही समझना है, जैसा कि वह है; अपनी मान्यता थोड़े ही उस पर लादना है।

केवली भगवान का ज्ञान पर्यायों की क्रमबद्धता को स्पष्ट देखता-जानता है और हम उसे आगम से, अनुमान से, युक्ति से जानते हैं। वे यह भी स्पष्ट जानते हैं कि किस द्रव्य की कौनसी पर्याय कब और कौनसी विधि से व किस निमित्तपूर्वक कैसी होगी और हम मात्र यह जानते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव व निमित्त सब-कुछ निश्चित है, पर यह नहीं जानते कि किसका, कब, क्या, कैसे होगा ?

'भविष्य की पर्यायें भी क्रमबद्ध ही होती हैं'—यह ज्ञान होने पर भी यदि हमें यह ज्ञान नहीं है कि किसके बाद कौनसीपर्याय होगी—तो इससे वे क्रमबद्ध कैसे हो जावेंगी जिससे हम यह कह सकें कि हमारे ज्ञानानुसार पर्यायें अक्रमबद्ध होती हैं।

इससे तो हमारी अज्ञानता ही सिद्ध होती है, पर्यायों की अक्रमबद्धता नहीं। हमें अपने अज्ञान को पर्यायों पर थोपने का क्या अधिकार है ?

जरा विचार तो करो ? रविवार आदि सात वारों का का एक क्रम निश्चित है। कुछ व्यक्तियों को उनके क्रम का ज्ञान है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि किस वार के बाद कौनसा वार आता है और यह भी जानते हैं कि भविष्य में भी इसी क्रम से ये वार आवेंगे, पर कुछ लोगों को

इस बात का ज्ञान नहीं है। तो क्या जिन लोगों को ज्ञान है, उनके ज्ञानानुसार वार क्रमबद्ध होंगे और जिन्हें ज्ञान नहीं है, या गलत ज्ञान है उनके ज्ञानानुसार वे अक्रमबद्ध या अनिश्चित हो जावेंगे।

मुझे विश्वास है–यह बात आपको भी स्वीकार न होगी, क्योंकि उनके ज्ञान, अज्ञान या गलत ज्ञान का वारों पर क्या असर होनेवाला है? वे तो अपने निश्चित क्रमानुसार ही होंगे; उसीप्रकार पर्यायों की क्रमबद्धतारूप वस्तुस्थिति पर केवली के ज्ञान और क्षयोपशम ज्ञानवालों के ज्ञान या अज्ञान से क्या अंतर पड़ता है, वह तो जैसी है वैसी ही रहेगी।

ज्ञान, अज्ञान, अल्पज्ञान, पूर्णज्ञान, मिथ्याज्ञान की स्थितियों से वस्तु की स्थिति का कोई संबंध नहीं है, इनसे उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि वस्तु की जो स्थिति है, उसके अनुसार ही ज्ञान जानता है–अर्थात् उसे जो सही जानता है, वह सही ज्ञान है; जो पूर्ण जानता है, वह पूर्ण ज्ञान है; जो अपूर्ण जानता है, वह अपूर्ण ज्ञान है; जो मिथ्या जानता है, वह मिथ्याज्ञान है; और जो नहीं जानता है वह अज्ञान है।

अत: यह कहना कि केवली के ज्ञान के अनुसार पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं और हमारे ज्ञान के अनुसार अक्रमबद्ध, 'क्रमबद्धपर्याय' का सही स्वरूप समझे बिना ही 'मैं भी सही और तू भी सही' जैसी उभयाभासी बालचेष्टा है, अनेकांत नहीं।

जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा में सम्मिलित दोनों पक्षों के सभी दिग्गज विद्वानों ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक कार्य स्वकाल में ही होता है। बात का उल्लेख 'जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा' में इस प्रकार मिलता है :-

''१. अपर पक्ष द्वारा प्रत्येक कार्य का स्वकाल में होना स्वीकार

इसका प्रारंभ करते हुए अपर पक्ष ने सर्वप्रथम हमारे द्वारा प्रथम और द्वितीय उत्तर में उल्लिखित जिन पाँच आगमप्रमाणों के आधार से यह स्वीकार कर लिया है कि 'प्रत्येक कार्य स्वकाल में ही होता है' इसकी हमें प्रसन्नता है। हमें विश्वास है कि समग्र जैन परंपरा इसमें प्रसन्नता का अनुभव करेगी, क्योंकि 'प्रत्येक कार्य स्वकाल में ही होता है' यह तथ्य एक ऐसी वास्तविकता है, जो जैनधर्म और वस्तुव्यवस्था का प्राण है। इसे अस्वीकार करने पर न तो केवलज्ञान की सर्वज्ञता ही सिद्ध होती है और न ही वस्तुव्यवस्था के अनुरूप कार्य-कारण परंपरा ही सुघटित हो सकती है।

अपर पक्ष ने प्रतिशंका ३ में जिन शब्दों द्वारा स्वकाल में कार्य का होना स्वीकार किया है, वे शब्द इसप्रकार हैं:-

'यह हम जानते हैं कि जिनेन्द्रदेव को केवलज्ञान के द्वारा प्रत्येक कार्य के उत्पन्न होने का समय मालूम है। कारण कि केवलज्ञान में विश्व के संपूर्ण पदार्थों की त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों का केवलज्ञानी जीवों को युगपत् ज्ञान कराने की सामर्थ्य जैन संस्कृति द्वारा स्वीकार की गई है। उसी आधार पर यह बात भी हम मानते हैं कि प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति उसी काल में होती है, जिस काल में उसकी उस उत्पत्ति का होना केवलज्ञानी जीव के केवलज्ञान में प्रतिभासित हो रहा है।'

२. केवलज्ञान ज्ञापक है कारक नहीं

साथ ही उक्त तथ्य की स्वीकृति के बाद अपर पक्ष की ओर से जो यह भाव व्यक्त किया गया है कि—'परंतु किसी भी कार्य की उत्पत्ति जिस काल में होती है, उस काल में वह इस आधार पर नहीं होती है कि उस काल में उस कार्य की उस उत्पत्ति का होना केवलज्ञानी के ज्ञान में प्रतिभासित हो रहा है; क्योंकि वस्तु की जिस काल में जैसी अवस्था हो उस अवस्था को जानना मात्र केवलज्ञान का कार्य है, उस कार्य का होना केवलज्ञान का कार्य नहीं है।'

सो यह कथन भी आगम परंपरा के अनुरूप होने से स्वीकार करने योग्य है, किंतु अपरपक्ष के इस कथन में इतना हम और जोड़ देना चाहेंगे कि—'जिसप्रकार जिस काल में जो कार्य होता है, उसे केवलज्ञान यथावत् जानता है; उसीप्रकार उसकी कारक सामग्री को भी वह जानता है।'

केवलज्ञान किसी कार्य का कारक न होकर ज्ञापक मात्र है, इसमें किसी को विवाद नहीं है।''[१]

इस उल्लेख से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि प्रत्येक कार्य स्वकाल में ही होता है- यह एक सर्वमान्य तथ्य है।

अब रही बात अनेकांत की। सो भाई! अनेकांत वस्तु के स्वरूप में सहज ही घटित होता है, उसे घटित करने के लिए वस्तुस्वरूप को बलात् विकृत करने की आवश्यकता नहीं है।

१. जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा, प्रथम भाग, पृष्ठ २४९

'पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं, अक्रम नहीं; और गुण अक्रम ही होते हैं, क्रम से नहीं।'—विधि निषेधपरक सम्यक् अनेकांत है। इसे ही ओर अधिक स्पष्ट करें तो गुणों की अपेक्षा द्रव्य अक्रम (युगपद्) है और पर्यायों की अपेक्षा क्रमबद्ध।

इसप्रकार गुण-पर्यायात्मक वस्तु में क्रम-अक्रम संबंधी अनेकांत घटित होता है।

जैसा कि आत्मख्याति में आचार्य अमृतचंद्र लिखते हैं :-

''क्रमाक्रमप्रवृत्तविचित्र भावस्वभावत्वादुत्संगितगुणपर्यायः ॥[१]

और वह समय (आत्मा अथवा कोई भी द्रव्य) क्रमरूप (पर्याय) और अक्रमरूप (गुण) प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुण-पर्यायों को अंगीकार किया है - ऐसा है।''

यहाँ पर वस्तु को गुण-पर्यायात्मक कहा है तथा गुणों का स्वभाव अक्रम व पर्यायों का स्वभाव क्रमवर्ती कहा है।

यदि पर्यायों में ही क्रम-अक्रम घटित करना अभीष्ट हो तो वह अपेक्षा दूसरी होगी।

प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं और प्रत्येक गुण की प्रति समय एक पर्याय होती है; इस अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य में एक समय में ही अक्रम अर्थात् एक साथ अनंत पर्यायें हो जाती हैं। तथा एक गुण की अनंत समयों में अनंत पर्यायें होती हैं, वे क्रमशः एक-एक समय में एक-एक ही होती हैं।

इसप्रकार पर्यायों को भी क्रम-अक्रम कहा जा सकता है। पर ध्यान रहे इस अपेक्षा क्रम-अक्रम मान लेने पर भी 'क्रमबद्धपर्याय' में चर्चित पर्यायों की क्रमनियमितता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इसप्रकार का कथन तत्त्वार्थराजवार्तिक में आता है, जो कि इसप्रकार है-

''स च पर्यायो युगपद्वृतः क्रमवृत्तो वा। सहवृत्तो जीवस्य पर्यायः अविरोधात् सहावस्थायी सहवृत्तेः गतीनिद्रयकाययोगवेदकषायज्ञानसंयमादिः। क्रमवर्ती तु क्रोधादि देवादिबाल्याद्यवस्था-लक्षणः।[२]

और वह पर्याय युगपत् भी होती है और क्रमवर्ती भी होती है। अविरोध से एक साथ

१. समयसार, गाथा २ की टीका

२. तत्त्वार्थवार्तिक, अध्याय ४, सूत्र ४२, पृष्ठ २५९

होनेवाली जीव की पर्याय एक साथ होने के कारण गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान और संयम आदि सहावस्थायी पर्याय है तथा क्रोधादि, देवादि और बाल्यादि अवस्थालक्षण क्रमवर्ती पर्याय है।''

'क्रम' और 'अक्रम' शब्दों के अर्थ दो प्रकार से किये जाते हैं। प्रथम तो यह कि क्रम माने क्रमशः अर्थात् एक के बाद एक और अक्रम माने युगपत् अर्थात् एकसाथ। दूसरा यह- क्रम माने एक के बाद एक और वह भी निश्चित एकदम व्यवस्थित तथा इसरूप में कि 'इसके बाद यही, अन्य नहीं'। अक्रम माने अव्यवस्थित, कुछ भी निश्चित नहीं, चाहे जिसके बाद चाहे जो।

उक्त दोनों अर्थों में प्रथम अर्थ के अनुसार ही पर्यायों में क्रम-अक्रम दोनों अपेक्षाऐं घटित होती हैं, जबकि प्रस्तुत अनुशीलन में द्वितीय अर्थ की अपेक्षा क्रमबद्धपर्याय का अनुशीलन किया गया है, तद्नुसार पर्यायें एक निश्चित क्रमानुसार ही होती हैं, अक्रम से नहीं—ऐसा सम्यक् एकांत फलित होता है, जो कि स्याद्वादी जैनदर्शन को अभीष्ट ही है।

सम्यक् और मिथ्या के भेद से एकांत भी दो प्रकार का होता है और अनेकांत भी दो प्रकार का, जिसकी चर्चा 'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन' में विस्तार से कर आये हैं। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि जैनदर्शन सम्यक् एकान्तवादी और सम्यक् अनेकान्तवादी दर्शन है।

सम्यक् अनेकांत द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु पर घटित होता है और सम्यक् एकान्त द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु के एक अंश अर्थात् द्रव्य या पर्याय पर घटित होता है।

यहाँ चूँकि पर्याय की चर्चा है, अतः उस पर सम्यक् एकांत ही घटित होता है। पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं, यह सम्यक् एकांत है और गुण अक्रमबद्ध (युगपद) ही होते हैं—यह भी सम्यक् एकांत है।

गुण और पर्याय—दोनों वस्तु (द्रव्य) के अंश हैं और वस्तु अर्थात् द्रव्य अंशी है। नयरूप सम्यक् एकांत अंशग्राही होता है और प्रमाणरूप सम्यक् अनेकांत अंशीग्राही अर्थात् वस्तुग्राही होता है। गुण और पर्याय वस्तु के अंश हैं, अतः वे सम्यक् एकांतस्वरूप हैं और गुण-पर्यायात्मक वस्तु अंशी होने से अनेकांतस्वरूप है।

अक्रमवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्याय-इसप्रकार गुण-पर्यायात्मक वस्तु में अनेकांत घटित होता है।

वैसे तो एक अपेक्षा हम ऊपर पर्यायों में भी क्रमाक्रम घटित कर आये हैं और यह भी बता आये हैं कि अकलंकदेव ने ऐसा प्रयोग किया है, फिर भी यदि आप इसी अपेक्षा अकेली पर्याय में क्रमाक्रम घटाने का हठ करेंगे तो फिर हम आपसे यह भी कह सकते हैं कि अकेली पर्याय में आप नित्यानित्यात्मक अनेकांत भी घटाइये अथवा अकेले पर्यायरहित द्रव्य में ही नित्यानित्यात्मक अनेकांत घटाकर बता दीजिए।

आखिर नित्यानित्यात्मक अनेकांत भी तो गुण-पर्यायात्मक वस्तु में ही घटित होता है, अकेली पर्याय में नहीं, अकेले द्रव्य में भी नहीं।

जैसे—वस्तु द्रव्यदृष्टि से नित्य और पर्यायदृष्टि से अनित्य। क्या पर्यायरहित अकेले द्रव्य में या अकेली पर्याय में नित्यानित्यात्मकता घट सकती है ? नहीं, तो फिर क्रमाक्रम को भी अकेले द्रव्य या अकेली पर्याय में घटित करने का हठ क्यों ? क्रमाक्रम का अनेकांत भी गुण-पर्यायात्मक वस्तु में ही घटित होगा।

अनेकांत का सही स्वरूप समझे बिना चाहे जहाँ उल्टा-सीधा अनेकांत लगा देना अच्छी बात नहीं है। अनेकांत को घटित करने के पहिले उसका सही स्वरूप समझ लेना चाहिए।[१]

(१४) प्रश्न :- अकालमृत्यु के संदर्भ में आपने ही तो घड़े के पानी और अपराधी के जेल से छूटने आदि का उदाहरण देकर यह बताया था कि केवली के ज्ञान के अनुसार तो मरणादि कार्य स्वकाल में ही होते हैं किंतु ज्योतिष आदि क्षयोपशम ज्ञान के अनुसार जो भी मरणादि संबंधी भविष्य बताया जाता है उसमें आयु के अपकर्षण आदि के द्वारा फेरफार भी हो जाता है।

इससे तो यह प्रतीत होता है कि केवली के ज्ञानानुसार पर्यायें क्रमबद्ध और हमारे ज्ञानानुसार अक्रमबद्ध होती हैं ?

उत्तर :- उक्त उदाहरणों से तो यह सिद्ध किया गया था कि मरणादि प्रत्येक कार्य (पर्याय) होता तो स्वकाल में ही है, पर उसका कथन दो प्रकार से होता है; यह नहीं बताया था कि कुछ पर्यायें स्वकाल में होती हैं और कुछ अकाल में भी हो जाती हैं।

आयुकर्म की स्थिति में अपकर्षणादि के बिना आयुकर्म की स्थिति पूर्ण होने के उपरांत

१. अनेकांत की विस्तृत जानकारी के लिए लेखक की अन्य कृति 'अनेकांत और स्याद्वाद' देखिये।

होनेवाले मरण को कालमरण और आयुकर्म की स्थिति का अपकर्षणादि से होनेवाले मरण को अकालमरण कहा जाता है।

अकालमरण का आशय स्वकाल के बिना होनेवाले मरण से नहीं है, अपितु आयुकर्म के अपकर्षणादि से है। आयु के अपकर्षणादि के कारण अकालमरण उसकी संज्ञामात्र है। वास्तव में तो प्रत्येक कार्य स्वकाल में ही होता है।

मोक्ष एवं सम्यक्त्वरूपी कार्य के संबंध में कलश टीकाकार पांडे राजमलजी लिखते हैं:-

''यह जीव इतना काल बीतने पर मोक्ष जायेगा—ऐसी नोंध केवलज्ञान में है।..... यद्यपि सम्यक्त्वरूप जीवद्रव्य परिणमता है तथापि काललब्धि के बिना करोड़ उपाय किये जायें तो भी जीव सम्यक्त्वरूप परिणमन योग्य नहीं।''[१]

कोई भी घटना नवीन घटित नहीं होती, अपितु वह पहले से ही स्थित है, निश्चित है; वह तो मात्र स्वकाल में प्रगट होती है। इसप्रकार का भाव सापेक्षवाद के प्रबल प्रचारक प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन (Einstein) ने भी व्यक्त किया है। जो कि इसप्रकार है :-

"Events do not happen, they already exist and are seen on the time-machine."

घटनाएँ घटती नहीं हैं; वे पहले से ही विद्यमान हैं, तथा कालचक्र पर देखी जाती हैं।

१. समयसार कलश ४ की टीका का भावार्थ

वास्तव में भगवान की स्तुति क्या है?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की तेतीसवीं गाथा और उसमें समागत २७वें था २८वें कलश पर हुए पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है :-

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं॥३३॥

जब मोह को जीतनेवाले साधु का मोह क्षीण होकर सत्ता में से नष्ट हो तब निश्चय को जाननेवाले उस साधु को निश्चय से 'क्षीणमोह' कहते हैं।

इस गाथा में आचार्यदेव ने सर्वोत्कृष्ट स्तुति का वर्णन किया है।

केवली भगवान की वास्तविक स्तुति क्या है? इस विषय का वर्णन आचार्यदेव ने ३१वीं गाथा से ३३वीं गाथा तक किया है।

३१वीं गाथा में देह और राग से भिन्न अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा के अनुभव से ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष का अभाव करके होनेवाली जघन्य स्तुति का वर्णन किया। इस स्तुति में राग का अभाव नहीं होता, मात्र राग में एकत्वबुद्धि का अभाव होता है।

३२वीं गाथा में स्वभाव के अवलंबन द्वारा उपश्रमश्रेणी में भाव्य-भावकदोष के अभावरूप दूसरी स्तुति का वर्णन किया है। यह मध्यम प्रकार की स्तुति है, क्योंकि इसमें रागादि भावों से भेद-विज्ञानपूर्वक स्वरूप में लीनता का पुरुषार्थ है। इसलिए यह पूर्वोक्त स्तुति से तो उत्कृष्ट प्रकार की है, परंतु इसमें मोह का पूर्णतया नाश नहीं हुआ, मात्र उपशम हुआ है; इसलिए यह मध्यम प्रकार की स्तुति है।

इस गाथा में आचार्यदेव ने पूर्वोक्त दोनों स्तुतियों से उत्कृष्ट प्रकार की स्तुति का वर्णन किया है। आत्मस्वरूप में उग्र लीनता के पुरुषार्थ से मोह का सर्वथा क्षय कर देना तीसरे प्रकार की स्तुति है। यद्यपि वर्णन करने में इसका तीसरा नम्बर है, तथापि यह सर्वोत्कृष्ट स्तुति है।

यहाँ तीन प्रकार की परमार्थस्तुति का वर्णन जाति अपेक्षा से नहीं, बल्कि पुरुषार्थ की

हीनता-उग्रता की अपेक्षा किया गया है। प्रथम स्तुति का जो विधान ३१वीं गाथा में बताया गया था, उसी विधान से अपने आत्मा को ज्ञानस्वभाव के द्वारा परद्रव्यों से भिन्न जानकर उसमें विशेष लीनता द्वारा जो जितमोह हुआ है, उसे अपने स्वभाव की भावना का भलीभाँति अवलंबन करने से मोह की संतति का ऐसा आत्यंतिक विनाश हुआ है कि फिर उसका उदय नहीं होता।

भगवान के सच्चे भक्त ने स्वरूप की असावधानीरूप मोह को स्वरूप में सावधान होकर नष्ट कर दिया। पहले तो मोह का तिरस्कार करके उसे दबा दिया था, किंतु अब स्वरूप का ऐसा अवलंबन किया कि पुनः मोह का उदय नहीं होगा।

यदि कोई ऐसा माने कि सम्यग्दर्शन होने के बाद दुख होता ही नहीं, तो वह सम्यग्दर्शन का स्वरूप ही नहीं जानता। आत्मा का अनुभव होने पर भी अस्थिरता से जितना राग है, उतना दुःख है। मुनि की भूमिका में भी जितना राग है, उतना दुःख है। इसलिए मुनिराज सच्चिदानन्द ज्ञायकभाव का उग्र अवलंबन लेकर भावक-भाव्य संकरदोष का अभाव करते हैं। ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकने से राग-द्वेष के वेदन का नाश हो जाता है। अपने चैतन्य प्रभु में विशेष लीनता का पुरुषार्थ विशेष आनन्द की प्राप्ति का उपाय है।

राग से भिन्न आत्मा की दृष्टि प्रथम प्रकार का भेद-विज्ञान है, तथा रागरहित आत्मा में लीनता द्वारा अस्थिरता के राग को दूर करना दूसरे प्रकार का भेद-विज्ञान है।

साधक जीव स्वयं अपने पुरुषार्थ से ही क्षपकश्रेणी का पुरुषार्थ करके मोह का क्षय करते हैं, उसमें कर्म का क्षय निमित्तमात्र है। बत्तीसवीं गाथा में उपशम श्रेणी के योग्य पुरुषार्थी जीव की बात कही है, इसलिए वहाँ 'मोह का तिरस्कार करके' इस शब्द का प्रयोग किया है, परंतु इस गाथा में क्षपकश्रेणी वाले जीव की बात है, इसलिए स्वभाव की भावना का भलीभाँति अवलंबन करने की बात कही है, अर्थात् मुनिराज ने स्वरूप में ऐसी जमावट की है कि मोह का एक अंश भी न रहे।

जिसप्रकार अग्नि को राख से दबाने पर वह पुनः प्रगट हो जाती है, परंतु यदि उसे नष्ट कर दिया जाए तो वह पुनः प्रगट नहीं हो सकती; उसीप्रकार मोह को दबा दिया जाए तो वह पुनः प्रगट हो जाता है, परंतु यदि उसे नष्ट कर दिया जाए तो वह फिर प्रगट नहीं हो सकता।

केवली भगवान की उत्कृष्ट स्तुति करनेवाला अपने ज्ञानस्वभाव में ऐसा स्थिर होता है कि अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रगट हो जाए। जो जीव इसप्रकार मोह का क्षय करता है, वह 'क्षीणमोह जिन' कहलाता है।

यह बारहवें गुणस्थान की बात है। अपने स्वरूप में लीनता द्वारा क्षायिक चारित्र प्रगट करना-यही केवली भगवान की निश्चयस्तुति है। बारहवें गुणस्थान में केवली भगवान की सर्वोत्कृष्ट स्तुति है और अंतर्मुहूर्त बाद तेरहवें गुणस्थान में स्तुति का फल अर्थात् परमात्मदशा प्रगट हो जाती है।

देखो! बारहवें गुणस्थान में होनेवाली उत्कृष्ट स्तुति का स्वरूप आचार्यदेव अप्रतिबुद्ध को समझा रहे हैं। समयसार अर्थात् साक्षात् सीमंधर भगवान का संदेश। अंतर्मुहूर्त में हजारों बार निज चैतन्य परमात्मा में एकाग्र होनेवाले कुंदकुंदाचार्य मुनिराज ने विदेहक्षेत्र में विराजमान सीमंधर परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे। वर्तमान में यहाँ साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा तो हैं नहीं और अपने में विदेहीनाथ सीमंधर भगवान के दर्शन की योग्यता भी नहीं है। अरे.... पर भगवान के साक्षात् दर्शन की योग्यता भले न हो, पर अंदर में विराजमान निज भगवान के दर्शन करने की योग्यता तो प्रत्येक संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणी में है।

अंतर में विराजमान पूर्णानंद के नाथ भगवान आत्मा का कथन, स्मरण और अनुभव—यही केवली भगवान की सच्ची स्तुति है। चतुर्थ गुणस्थान में तो ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष का अनुभव था और अब भाव्य-भावकभाव का अभाव है। बत्तीसवीं गाथा में कहे गए राग-द्वेष आदि सोलह भावरूप मोह की संतति भाव्य है तथा कर्म का उदय भावक है। स्वरूप के उग्र अवलंबन द्वारा मुनिराज मोह की संतति का ऐसा नाश करते हैं कि अंतमुहूर्त बाद केवलज्ञान होकर ही रहेगा।

सम्यग्ज्ञानपूर्वक आत्मस्वरूप में लीनता ही वास्तविक धर्म है, और यही केवली भगवान की सच्ची स्तुति है। पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि का भाव शुभभाव है, उसे स्तुति कहना व्यवहार है। अशुभभाव से बचने के लिए ज्ञानी शुभभाव में युक्त होते हैं, किंतु उसे विकारी भाव ही समझते हैं, उससे स्वरूप में लाभ नहीं मानते।

यहाँ कही गई तीनों प्रकार की स्तुति का संबंध आत्मा से है। आत्मा के अनुभवपूर्वक ही तीनों स्तुतियाँ होती हैं। आत्मानुभूति के बिना मात्र शुभराग व्यवहार से भी स्तुति नहीं है।

अब यहाँ इस निश्चय-व्यवहाररूप स्तुति के अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:—

''एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चया-
न्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवे-
न्नातस्तीर्थंकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥२७॥

शरीर और आत्मा में व्यवहारनय से एकत्व है, किंतु निश्चयनय से नहीं है, इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा का स्तवन व्यवहारनय से हुआ कहलाता है, निश्चयनय से नहीं; निश्चय से तो चैतन्य के स्तवन से ही चैतन्य का स्तवन होता है। उस चैतन्य का स्तवन यहाँ जितेन्द्रिय, जितमोह, क्षीणमोह इत्यादिरूप से कहा गया है। इसप्रकार अज्ञानी ने तीर्थंकर के स्तवन के संबंध में जो प्रश्न किया था (२६वीं गाथा में) उसका नयविभाग से दिए गए उत्तर के बल से सिद्ध हुआ कि आत्मा और शरीर में निश्चय से एकत्व नहीं है।''

संसार अवस्था में शरीर और आत्मा का एकक्षेत्रावगाही संबंध है। इसलिए शरीर और आत्मा को व्यवहार से एक कहा जाता है, परंतु आकाश के एकप्रदेश में रहने मात्र से शरीर और आत्मा एक नहीं हो जाते। आत्मा तो सदा असंख्यातप्रदेशी, अरूपी, चैतन्यरूप ही रहता है, तथा शरीर जड़ और रूपी ही रहता है। एक साथ रहने से कहीं जड़ चेतनरूप नहीं हो जाता और चेतन जड़रूप नहीं हो जाता।

एकक्षेत्रावगाही होने पर भी शरीर और आत्मा का परिणमन बिल्कुल स्वतंत्र है। यद्यपि दोनों की क्रियाओं में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, तथापि दोनों का परिणमन अपनी-अपनी योग्यता से होता है, कोई किसी के आधीन परिणमित नहीं होता।

अरहंत अवस्था में भी शरीर और आत्मा एक ही स्थान पर रहते हैं, इसलिए शरीर का स्तवन व्यवहार से केवली का स्तवन कहलाता है। केवली भगवान का स्तवन शरीर की अपेक्षा किया जाए या आत्मिक गुणों की अपेक्षा किया जाए, दोनों अपेक्षाओं से किया गया स्तवन शुभभाव है। आत्मानुभवपूर्वक होनेवाला शुभभाव व्यवहार से स्तवन है, और आत्मस्वरूप में एकाग्र होना निश्चयस्तवन है।

वास्तव में तो ध्रुवस्वरूप अखंड आत्मा ही परमार्थ अर्थात् निश्चय है और आत्मा में एकाग्र होना व्यवहार है, परंतु यहाँ स्वाश्रित परिणाम होने की अपेक्षा स्वरूप में एकाग्रता को परमार्थ कहा है।

पराश्रय छोड़कर आत्मस्वरूप में एकाग्र होना आत्मा की मूक भक्ति है।

वाणी से स्तुति करने का भाव तो शुभराग है। स्वरूप में एकाग्र होना निश्चय स्तुति है।

अब फिर, इस अर्थ के जानने से भेदज्ञान की सिद्धि होती है–इस अर्थ का सूचक काव्य कहते हैं :—

''इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां
नयविभजनयुक्त्याऽत्यंतमुच्छादितायाम्।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव॥२८॥

वस्तु के यथार्थस्वरूप का परिचय करनेवाले मुनियों ने जब आत्मा और शरीर के एकत्व को नयविभाग की युक्ति द्वारा जड़–मूल से उखाड़ फेंका है–उसका अत्यंत निषेध किया है, तब निजरस के वेग से आकृष्ट हुए किस पुरुष को वह ज्ञान तत्काल ही यथार्थपने को प्राप्त न होगा? अवश्य ही होगा।''

देखो! आचार्यदेव श्रोता की पात्रता में विश्वास व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हमने नयविभाग की युक्ति द्वारा देह और आत्मा की भिन्नता का परिचय किया है, तब ऐसा कौन पुरुष होगा जिसे देह से भिन्न आत्मा की सम्यक् प्रतीति न हो?

अहा..... आचार्यदेव देह और आत्मा की भिन्नता का स्वयं अनुभव करके शिष्य को समझाते हैं। उन्हें विश्वास है कि जब मैं अपने अनुभव की कसौटी पर कसके यह बात कह रहा हूँ, तब शिष्य की समझ में भी अवश्य आएगी।

एकत्व विभक्त आत्मा को निज वैभव से दिखाने की प्रतिज्ञा आचार्यदेव ने ५वीं गाथा में ही की है, और शिष्य पर भी जिम्मेदारी डाली है कि तुम भी अपने अनुभव से प्रमाण करना। देखो तो! समयसार का मंगलाचरण ही देह से भिन्न अखंड आत्मा को स्वानुभव से दिखाने और देखने की प्रतिज्ञा से हुआ है।

जिस जीव को वस्तु–स्वरूप समझने की सच्ची जिज्ञासा हो, आत्महित की यथार्थ रुचि हो; उसे आत्मानुभवी गुरु की देशना का निमित्त अवश्य ही मिलता है। जिन्होंने स्वयं आत्मा का निर्णय करके अनुभव किया है और अब वे प्रचुर स्वसंवेदन की दशा में झूल रहे हैं, ऐसे मुनिराज कहते हैं कि हे भाई! जिसप्रकार हमने स्वयं अंतर्मुख होकर अनुभव किया है कि

आत्मा देह और राग से भिन्न अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वभावी हैं; उसीप्रकार यदि तुम भी देह और राग से लक्ष्य हटाकर आत्मसम्मुख होकर अनुभव करो तो तुम्हें शरीरादि से भिन्न आत्मा का बोध कैसे नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य होगा।

मन-वचन-काय और रागादि से भिन्न आत्मा का ज्ञान निज रस के वेग से आकृष्ट होता हुआ प्रगट होता है। मैं आनंदमूर्ति हूँ—ऐसी श्रद्धा द्वारा आत्मा में एकाग्र होने पर मात्र ज्ञान ही नहीं, बल्कि निराकुल अतीन्द्रिय आनंद भी प्रगट होता है। आत्म-प्रसिद्धि होने पर अपूर्व शांति, आनंद आदि सहज ही प्रगट हो जाते हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि हमारी बात सुनकर किस पुरुष को यथार्थ ज्ञान न होगा ? जब कहनेवाला ज्ञानी है और समझनेवाला पात्र है तो फिर समझ में क्यों नहीं आयेगा ? जिसने पात्र होकर सुना है, उसकी समझ में अवश्य आयेगा। पंचमकाल के प्राणियों की पात्रता देखकर आचार्यदेव ने शास्त्र लिखे हैं। देखो! पंचमकाल के संत पंचमकाल के जीवों को देह और आत्मा की भिन्नता समझा रहे हैं। उन्हें विश्वास है कि पंचमकाल के पात्र जीव जड़ से भिन्न चैतन्यमूर्ति का अनुभव अवश्य करेंगे।

यहाँ पात्र जीवों की समझ में अवश्य आयेगा—ऐसा कहा है, दीर्घसंसारी जीव की बात यहाँ नहीं है। उसका भी जब संसार अल्प रहेगा तब वह भी अवश्य समझेगा। आत्मा का अनुभव होने पर दीर्घसंसार होता ही नहीं। ज्ञानी को स्वयं ऐसी प्रतीति हो जाती है कि अब संसार बहुत अल्प बाकी है। उन्होंने अनंत पुरुषार्थ का पिण्ड आत्मा देखा है, इसलिए अब अनंत संसार में परिभ्रमण का नाश कर शीघ्र ही अनंत सुखस्वरूप मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करेंगे।

जो ऐसा मानते हैं कि पंचमकाल में आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता; इसलिए अभी तो 'शुभभाव करो, इससे महाविदेहादि में जन्म लेंगे, फिर वहाँ शुद्धोपयोग प्रगट कर लेंगे'—ऐसे जीवों को शुभभाव की रुचि है, ऐसे अपात्र जीवों की यहाँ बात नहीं है। शुभभाव की रुचि का पोषण करनेवाले जीव तो साक्षात् तीर्थंकर के सान्निध्य में भी राग का ही पोषण करेंगे। इसलिए यहाँ तो राग से भिन्न आत्मा की बात सुनकर जिनकी राग की रुची ढ़ीली पड़ गई है तथा जो राग से भिन्न आत्मा का अनुभव करने के अभिलाषी हैं, ऐसे पात्र जीवों की बात ली है।

इसप्रकार ३१वीं, ३२ वीं और ३३वीं गाथा में वर्णित जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट प्रकार से स्तुति करनेवाले जीव का संसार-भ्रमण नष्ट हो जाता है। उत्कृष्ट स्तुति करनेवाला जीव तो

अंतर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान प्रगट करके जीवन-मुक्त हो जाता है, परंतु जघन्य स्तुति करनेवाला जीव भी दृष्टि-मुक्त तो हो ही गया, अल्पकाल में देह-मुक्त भी हो जाता है।

२६वीं गाथा में आचार्य ने अज्ञानी की मान्यता बताते हुए कहा था:-

''यदि य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यं न भवेत्तदा तीर्थंकराचार्य स्तुतिः समस्तापि मिथ्या स्यात्। ततो य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यमिति ममैकान्ति की प्रतिपत्तिः।'' —इसप्रकार अप्रतिबुद्धजीव शरीर को ही आत्मा मानता है। उसकी यह मान्यता ही अनादिकालीन मोह की संतान है। अपने चैतन्यस्वभाव का स्वाद न लेकर अज्ञानी ने देह और विकार का ही स्वाद लिया है। चैतन्य की बात भी उसने अनादि से नहीं सुनी, इसलिए वह देह को ही आत्मा मान बैठा है।

ऐसे शिष्य को आचार्यदेव ने ''नैंव, नयविभागानभिज्ञोसि''—ऐसा कहकर २७वीं गाथा से ३३वीं गाथा तक समझाया कि आत्मा और शरीर व्यवहार से एक कहे जाते हैं, परंतु निश्चय से तो ये दोनों भिन्न-भिन्न ही हैं, इसलिए शरीर की अपेक्षा केवली भगवान की स्तुति व्यवहारस्तुति है, परद्रव्यों से ज्ञानस्वभावी आत्मा को भिन्न जानकर ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष दूर करना तथा आत्मलीनता से भाव्य-भावकभाव का अभाव करना ही केवली भगवान की निश्चयस्तुति है।

इसप्रकार नयविभाग से देह और आत्मा की भिन्नता का वर्णन सुनकर अनादि से अप्रतिबुद्ध जीव तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति के प्रगट उदय होने से नेत्र के विकार की भाँति पटल समान आवरण कर्मों के उघड़ जाने से प्रतिबुद्ध हो गया।

ज्ञानीगुरु की देशना के निमित्त से पात्र जीव ने पर से भिन्न चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा की प्रतीति की और उसमें सम्यक् श्रद्धा का उदय हुआ। ऐसी प्रतीति गृहस्थाश्रम में भी आबाल-वृद्ध सभी को हो सकती है। ऐसी प्रतीति होने पर दर्शनमोह का आवरण स्वयं हट जाता है, इसलिए उसके उपशम, क्षयोपशम, या क्षय को सम्यग्दर्शन में निमित्त कहा जाता है।

जैसे—जिस पुरुष के नेत्रों में विकार होता है, उसे वर्णादि अन्य प्रकार से दिखते हैं, परंतु विकार मिटने पर उसे सभी पदार्थ ज्यों के त्यों दिखने लगते हैं; उसीप्रकार अज्ञानी की दृष्टि में मिथ्यात्व का विकार होने पर उसे देह और आत्मा एक दिखाई देते थे, परंतु ज्ञानी गुरु के निमित्त से नयविभाग द्वारा वस्तुस्वरूप समझने पर उसे सभी पदार्थ यथार्थ भासित होने लगते हैं।

अज्ञानी देह और आत्मा को एक मानता है, फिर भी आत्मा तो देह से भिन्न ही रहता है। जब आत्मा और शरीर की भिन्नता का अनुभव हुआ तब वे भिन्न हुए—ऐसा नहीं है। बिल्ली के बच्चे की आँख खुलने पर जगत दिखाई देता है तो वह मानता है कि जगत अभी बना है; उसीप्रकार जब भेदज्ञान की आँख नहीं खुली थी तब भी देह और आत्मा तो भिन्न ही थे, भेदज्ञान की आँख खुलने पर तो उसकी भिन्नता भासित होती है।

आत्मसम्मुख पुरुषार्थ से जब अज्ञानी जीव प्रतिबुद्ध होता है, तब उस पर से कर्मों का आवरण भलीभाँति हट जाता है। 'भलीभाँति' कहकर यह बताया है कि अब पुनः कभी कर्म का उदय नहीं होगा। कोई कहे कि—हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं, परंतु कर्म का उदय है, इसलिए सम्यग्दर्शन नहीं होता। परंतु ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन के लिए जितना और जैसा पुरुषार्थ चाहिए उतना और वैसा पुरुषार्थ नहीं करता—इसलिए सम्यग्दर्शन नहीं होता, कर्म का उदय तो निमित्तमात्र है।

सम्यग्दर्शन होने पर जीव अपने स्वरूप का साक्षात् दृष्टा होता हुआ अपने को अपने से ही जानता है और श्रद्धा करता है। पहले देव-शास्त्र-गुरु के निमित्त से विकल्पात्मक ज्ञान द्वारा स्वरूप का निर्णय किया था, परंतु अब देव-शास्त्र-गुरु तथा विकल्प के अवलंबन बिना ज्ञान को स्वरूप में एकाग्र करके आत्मा का साक्षात् अनुभव किया। इसप्रकार आत्मानुभव में पर से निरपेक्षता बताने के लिये साक्षात् दृष्टा कहा है। आत्मा का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टारूप है ही, परंतु अब उस स्वभाव का अनुभव होने पर पर्याय में भी ज्ञाता-दृष्टापन प्रगट हुआ।

सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञान भी सम्यक् हो जाता है, परंतु अभी पूर्ण स्थिरता प्रगट नहीं हुई, इसलिए शिष्य स्वरूप में ही रमणता का इच्छुक होता हुआ पूछता है—इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान क्या है ? देखो ! शिष्य को जिस स्वभाव का श्रद्धा और ज्ञान हुआ है, उसी का आचरण करने का अभिलाषी है, रागादिरूप आचरण का अभिलाषी नहीं है।

शिष्य अत्यंत विनयपूर्वक प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र की विधि पूछता है। यद्यपि उसे आत्मानुभव के साथ अनंताबंधी क्रोध-मान-माया-लोभादि का अभाव होने से स्वरूपाचरण चारित्र तो प्रगट हुआ ही है, तथापि वह विशेष उग्रतारूप चारित्र का अभिलाषी है।

आत्मानुभव होने पर संपूर्ण मोक्षमार्ग का स्वरूप ख्याल में आ जाता है। ज्ञानी सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के समय आत्मस्थिरता का पुरुषार्थ तो कर ही चुके हैं—अतः स्वरूप में

स्थिर कैसे हुआ जाता है–यह उन्हें ज्ञान है, फिर भी गुरु से चारित्र की विधि पूछते हैं। यह उनकी आंतरिक विनय तथा अतिशीघ्र चारित्रदशा प्रगट करने की तीव्र भावना का प्रतीक है। सब कुछ भान होने पर भी ज्ञानी चारित्र की विधि पूछते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे चारित्र की परिभाषा जानना चाहते हैं। ऐसा पूछकर वे चारित्रदशा अंगीकार करने की तीव्र उत्कंठा व्यक्त करते हैं। उन्हें अल्पकाल में ही चारित्र प्रगट होनेवाला है।

जब शिष्य अप्रतिबुद्ध था तब अपने को शरीररूप अनुभव करता था, परंतु अब विवेक–ज्योति प्रगट हो गई है, इसलिए उल्लसित होकर अपने को आत्माराम कहकर पूछता है कि प्रभो! इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान क्या है?

देखो! गुरु जबरदस्ती मुनिदीक्षा लेने के लिए नहीं कहते कि अब सम्यग्दर्शन हो गया तो जल्दी से दीक्षा ले लो। शिष्य भी अपनी भूमिका का विवेक रखते हुए चारित्र धारण करने की उत्कृष्ट भावना रखता है।

ज्ञानियों के अंतर में चारित्र धारण करने की तीव्र भावना होती है, पर यदि अंतर की कमजोरी के कारण धारण न कर सकें तो वे आकुलित भी नहीं होते। चारित्र के विषय में उनके हृदय में उपेक्षा भी नहीं है और आकुलता भी नहीं है। उनकी वृत्ति पूर्णत: सन्तुलित होती है।

यहाँ तो उत्कृष्ट स्तुति का वर्णन किया है। इसलिए शिष्य भी ऐसा लिया है कि जिसे सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र प्रगट करने की तीव्र भावना है। शिष्य की दृष्टि देह और राग से हटकर ज्ञानानंदस्वभाव में रम गई है, इसलिए वह आत्माराम हो गया है।

अहो! वन–जंगल में रहनेवाले आनंदकंद आत्मा में रमनेवाले चारित्रवंत मुनिराज से शुद्धात्मतत्त्व का स्वरूप सुनकर प्रतिबद्ध हुआ चतुर्थ गुणस्थानवर्ती शिष्य चारित्र प्रगट करने की विधि पूछता है। शिष्य ने सम्यग्दर्शन प्रगट करके चारित्रभाव की पात्रता तो प्रगट कर ली है, पंचेन्द्रियों के विषयों में सुख–बुद्धि नष्ट होकर अतीन्द्रिय सुखस्वरूप आत्मा के अनुभव से निराकुल अतीन्द्रिय सुख का आंशिक स्वाद लिया है; और अब पूर्ण सुख प्रगट करने की भावना से व पूर्ण चारित्रदशा प्रगट करने की भावना व्यक्त करते हुए चारित्र संबंधी प्रश्न पूछा है।

इसप्रकार भाव्य–भावकभाव के अभावरूप सर्वोत्कृष्ट स्तुति का वर्णन करके आचार्यदेव आगामी गाथा में प्रत्याख्यान का स्वरूप कहेंगे।

*

जैसे सिद्ध वैसे ही संसारी

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की ४७वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोक पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जरमरणजम्ममुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण ॥४७॥

जैसे सिद्ध आत्मा हैं, वैसे भवलीन (संसारी) जीव हैं, जिससे वे (संसारीजीव सिद्धात्माओं की भाँति) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणों से अलंकृत हैं।

जैसे परमानंद दशा को प्राप्त सिद्ध भगवान हैं, वैसे संसारी जीव शक्तिरूप से हैं। अशरीरी सिद्धदशा प्रगट करने की शक्ति प्रत्येक जीव में है। इस गाथा में एकसमय की पर्यायबुद्धि छुड़ाई है। वस्तुदृष्टि से देखा जाये तो संसारी जीव भी जन्म-जरा-मरण से रहित हैं तथा अष्ट गुणों से अलंकृत हैं। इसकी प्रतीति करने से सम्यग्दर्शनादि प्रगट होकर सिद्धदशा की प्राप्ति होती है।

शुद्धस्वभाव की दृष्टि से संसारी और मुक्त जीवों में कोई अंतर नहीं हैं।

शुद्धद्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अंतर न होने का यह कथन है।

शुद्धज्ञानस्वभाव जिस ज्ञान का प्रयोजन है, अथवा जिस ज्ञान का अंश ऐसा निश्चय करता है कि 'मैं त्रिकालशुद्ध हूँ'; उस ज्ञान के अंश को शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं। उस नय से ऐसा निश्चय होता है कि प्रत्येक जीव सिद्धसमान है। विकार और अल्पज्ञता का लक्ष छोड़कर आत्मद्रव्य के अंदर देखा जाय तो प्रत्येक संसारी आत्मा भी सिद्ध जैसा है। इस नय से सिद्ध और संसारी जीव में अंतर नहीं है; ऐसी प्रतीति करना वह प्रथम धर्म है। ऐसी प्रतीति करके फिर स्थिरता करके जीव सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं। कारणपरमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान करके कारणपरमात्मा होते हैं; ऐसी तीर्थंकरदेव के श्रीमुख से वाणी निकली है।

जो जीव सिद्ध हुए वे किस रीति से सिद्ध हुए वह क्रम बताते हैं।

जिस जीव में मोक्ष की योग्यता है और जिसको श्रद्धान हुआ कि 'मेरी मुक्ति अल्पकाल में है, मैं पुण्य-पाप के योग्य नहीं, मेरा स्वरूप अल्पज्ञता और विकार के लायक नहीं, मैं परमात्मा होने योग्य हूँ—वह अति आसन्नभव्य जीव है। भव्य जीवों में भी अति निकट योग्यतावाला जीव लिया। वह जीव परमात्मदशा पाने से प्रथम विकारी दशा में था। परपदार्थ में सुख है, ऐसी बुद्धि वह संसार है। ऐसी संसारदशा से थके हुए जीवों की बात ली है। संसार में जिन्हें सुख भासता है, वे तो पर्यायबुद्धि जीव हैं—उनकी बात नहीं है। 'दया-दानादि के भाव भी क्लेशजनक हैं, मेरा शुद्धस्वभाव ही एकमात्र विश्राम लेने योग्य है'; इसप्रकार त्रिकाली स्वभाव की रुचि करके पुण्य-पाप से थककर, देव-गुरु-शास्त्र मुझे मुक्ति देंगे—ऐसी निमित्त की रुचि छोड़कर और अपने स्वभाव का आश्रय लेकर जो जीव प्रवत्त हुआ है; उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त होता है।

'सहज वैराग्य-परायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके' अर्थात् सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने के बाद सहज वैराग्य उत्पन्न हुआ है। प्रतिकूलता आने पर अथवा नर्क के दु:खों को सुनकर स्वर्ग-प्राप्ति के लिये वैराग्य करे—ऐसे मोहगर्भित वैराग्य की बात नहीं है। अपने आत्मा के भानसहित सहज वैराग्य जिसको वर्तता है, पर की ओर से उदासीन वृत्ति हो गई है, वह जीव जागृत हुआ है। पुण्य-पाप के अस्थिरता के भाव होते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है; अपने स्वभाव में स्थिर होना ही मेरा कर्तव्य है—इसप्रकार सहज वैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग धारण किया है; सम्यग्ज्ञान तो था, परंतु अब स्वभाव का विशेष अवलंबन लेकर भावलिंग प्रगट किया तब बाह्य से भी शरीर की नग्न दशा हुई है। वस्त्र छोड़ूँ, बाहर के परिग्रह को छोड़ूँ—ऐसा आग्रह नहीं होता। मुनि के योग्य सहज आनंद दशा की वीतरागी भूमिका प्रगट की अर्थात् द्रव्य-भावलिंग धारण किया, ऐसा कहा।

इसप्रकार सहज वैराग्य-परायण जीव स्वभाव में लीनतारूप अभ्यास से अव्याबाध ज्ञान-दर्शनादियुक्त सिद्धदशा को प्राप्त करता है।

परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त परमागम के अभ्यास से सिद्धक्षेत्र को पाकर अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख,

केवलवीर्य युक्त सिद्धात्मा हो गया। यह सिद्धात्मा कार्यसमयसाररूप है। यह सिद्धदशा शुद्धकार्य है।

मुनिपने के पश्चात् क्या किया? परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किये हुए परमागम के अभ्यास से सिद्धक्षेत्र को प्राप्त किया। परम आगम-दिव्यध्वनि का अभ्यास, अपने शुद्धस्वभाव में एकाग्रता का अभ्यास किया, तब परमागम के अभ्यास से पाया—ऐसा निमित्त से कथन किया है।

परमगुरु तथा भगवान की वाणी ने ऐसा कहा था कि अपनी पर्याय को शुद्ध स्वभाव में लगा तो स्थिरता से शुक्लध्यान प्रगट होकर केवलज्ञान प्रगट होगा। इसप्रकार गुरु की वाणी का कहने का आशय स्वयं समझ लिया और अपनी श्रुतज्ञान की पर्याय को स्वभाव में एकाकार किया। २८ मूलगुण का पालन करते-करते मोक्ष होगा-ऐसा नहीं कहा। चैतन्य वीतरागी स्वभाव की एकाग्रता का अभ्यास करते-करते मोक्ष प्राप्त होगा। इसी रीति से अनंत जीवों ने मोक्ष पाया, पाते हैं, और पायेंगे।

'गुरु के प्रसाद से' यह भी निमित्त से कथन है। शिष्य की ऐसी योग्यता थी जिससे वह गुरु और वाणी को समझ गया, ऐसे योग्य जीव को ज्ञानी जीव ही निमित्त होता है, अज्ञानी नहीं—तथापि गुरु के कारण पाया, ऐसा नहीं है। गुरु के कथन का आशय समझकर सिद्धदशा पाई अर्थात् गुरु के प्रसाद से प्राप्त किये हुए परमागम के अभ्यास से पाया—ऐसा कथन करने में आता है।

कैसी हैं वे सिद्ध आत्मायें? बाधारहित, अंतरायरहित, सर्वथा निर्मल, केवलज्ञानादि सहित हैं। इसप्रकार जो कोई अति आसन्नभव्य जीव हुए वे पहले संसारदशा में थे, पश्चात् सच्ची समझ करके सहज वैराग्यदशा लाकर मुनिपना अंगीकार करके सिद्धदशा को प्राप्त हुए। वे सिद्धात्मायें कार्यसमयसाररूप हैं-कार्यशुद्ध हैं।

संसारी आत्मा और सिद्धात्मा की जाति एक ही है।

सिद्ध आत्मा को कार्यशुद्ध क्यों कहा? त्रिकाली कारणपरमात्मा जो शक्तिरूप है, उसका अवलंबन लेकर अपनी पर्याय में परिपूर्ण शुद्धदशा प्रगट की, कार्य प्रगट हुआ, अतः कार्यशुद्ध कहते हैं। अज्ञानीजीव 'पर का अथवा जड़ का कार्य कर सकता हूँ'—ऐसी मान्यता में अटका है। ज्ञानी स्व-पर को जानता और देखता है। यदि वर्तमान पर्याय को गौण कर दिया

जाये तो संसारी आत्मा भी सिद्धसदृश शक्तिशाली है, उसमें श्रद्धा-ज्ञान करे तो वह परमात्मदशा को प्राप्त हो सकता है।

श्री आनंदघनजी कहते हैं :— कि हे जिनेश्वर! भगवान स्वभाव की ओर की प्रीति में भंग न पड़े, पुण्य-पाप से, निमित्त से अथवा पर्यायसे लाभ होगा ऐसी मान्यता मन में लाने नहीं दूँगा। जो तीर्थंकरादि हुए वैसे ही हम भी बनें, जो भगवान हुए वे भी आत्मा थे और उन्होंने भी कारणशुद्धपरमात्मा का आश्रय करके कार्यशुद्धपरमात्मपद प्रगट किया। हम भी उन्हीं की जाति के हैं, अतः हम भी सिद्धदशा प्रगट करेंगे।

ज्ञानीजीव चैतन्यस्वरूप शुद्धात्मा का आदर करता है और अज्ञानीजीव विकार तथा व्यवहार को श्रेष्ठ समझकर उनका आदर करता है।

जैसे वे शुद्धात्मायें हैं, वैसे ही शुद्ध निश्चयनय से भववाले (संसारी) जीव हैं। संसारी की विकारी पर्याय तथा सिद्ध की व्यक्ति मोक्षपर्याय है। यदि इनकी पर्याय को गौण करके देखा जाये तो संसारी जीव भी सिद्धसदृश हैं, शुद्धनिश्चयनय से इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। सोना में एक बान ताँबा का भाग मिल जाने से सोना पन्द्रह बान का कहा जाता है, किंतु यदि ताँबे के भाग का विचार न करें तो सोना तो सोलह बानवाला सोना ही है। बाजार में सोना लेने जाये तो उसमें मिले हुए ताँबे का पैसा कोई नहीं देता, केवल सोने का ही पैसा देता है, यदि देवे तो मूर्ख कहा जाये। वैसे ही संसारदशा में तथा दया-दानादि काम-क्रोध विकार के भाव ताँबा समान ही हैं, उनकी कीमत देवे और उनसे महानता माने वह मूर्ख है।

अज्ञानी जीव व्यवहार की, निमित्त की, पुण्य-पाप की कीमत देता है, वह अपने आत्मा को मानता नहीं, देव-शास्त्र-गुरु को भी मानता नहीं। ज्ञानी जीव समझता है कि अपना चैतन्यस्वरूप ही महान है, उसकी महानता के आगे अन्य कोई महान नहीं। इसप्रकार अपने ज्ञायकस्वभाव को सिद्धसमान समझनेवाला जीव धर्मदशा को प्राप्त होता है।

शुद्धनिश्चयनय से संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित हैं और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं।

जैसे वे संसारी जीव सिद्धात्माओं जैसे हैं, वैसे ही वे जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं (सम्यक्त्व-अनंतज्ञान-अनंतदर्शन-अनंतवीर्य-

सूक्ष्मत्व-अवगाहनत्व-अगुरुलघुत्व और अव्याबाध—इन अष्टगुणों की समृद्धि से आनंदमय हैं)।

शुद्धनिश्चयनय से विकार को गौण करके संसारी जीव को सिद्धसमान कहा था, उसी दृष्टि से देखा जाये तो संसारी जीव जन्मता नहीं, मरता नहीं, और उसको बुढ़ापा भी नहीं, तथा उसी दृष्टि से वह सम्यक्त्वादि आठ गुणों की समृद्धि से आनंदमय है। परवस्तु का आत्मा में त्रिकाल अभाव है, एकसमयमात्र के विकार को, अपूर्ण पर्याय को गौण करके अभूतार्थ कहकर त्रिकाली भूतार्थ शुद्धस्वभाव में उसका अभाव बताया है-द्रव्यदृष्टि कराई है।

यह सब आत्मा की बात चलती है, स्वपर-ज्ञायकस्वभाव एकरूप पड़ा है, भूल के समय भी शुद्ध स्वभाव तो ज्यों का त्यों है और भूल टालकर सिद्ध हो जाये तब भी शुद्ध-ज्ञायकस्वभाव वहाँ का वहीं है। शुद्धदृष्टि होने पर विकार तथा अपूर्ण पर्याय पर दृष्टि रहती नहीं-यही धर्म का कारण है।

मेरा रूप चेतन है, वह उपचाररहित है तथा मेरा पद सदा सिद्धसमान है, ऐसी दृष्टि करना वही धर्म का कारण है।

विद्यमान विकारी पर्याय को अविद्यमान (गौण) करके, अविद्यमान निर्मल पर्याय को विद्यमान करना (प्रगट करना) वह धर्म है।

संसारदशा में रहनेवाला विकार पर्याय में विद्यमान होने पर भी उसको अविद्यमान करना और त्रिकाली शुद्धस्वभाव जो अविद्यमान है, उसे श्रद्धा में लेकर विद्यमान करना—वह धर्म का कारण है। जो पुण्य-पाप को तो विद्यमान रहने देता है और स्वभाव को ढँका रखता है, वह संसार में रहता है; अतः जिसे धर्म करना हो उसे विकार को ढँकाकर स्वभाव को श्रद्धा-ज्ञान में लेना चाहिये। जो परमात्मा हुए हैं, वे आत्मा में से हुए हैं। प्राप्त की प्राप्ति होती है।

परम शक्ति कहाँ से प्रगट हुई? जहाँ होगी वहीं से तो आयेगी? विद्यमान भाव में से ही आयेगी, अविद्यमान अथवा अभाव में से नहीं आयेगी। अतः जो शक्ति भरी पड़ी है उसकी श्रद्धा-ज्ञान करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होता है और उसमें लीनता करने से चारित्रदशा प्रगट होकर शुक्लध्यानपूर्वक केवलज्ञान और सिद्धदशा प्राप्त होती है।

जैसे सिद्ध भगवान हैं वैसे ही संसारी जीव शक्तिरूप हैं। संसारदशा में होनेवाला विकार एकसमय का है, दोसमय का विकार कभी एकत्र नहीं होता। जो जीव विकार को मुख्य करे तो

स्वभाव का अनादर हो जाता है और त्रिकाली स्वभाव को मुख्य करे, एकसमय के विकार को गौण करे तो धर्मदशा प्रगट होती है।

यह शुद्धभाव अधिकार है, शुद्धभाव एकरूप अनादि-अनंत है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करने से धर्मदशा प्रगट होती है। त्रिकाली शुद्धभाव संसारी और सिद्ध में समान है, कोई अंतर नहीं है-यह बात गाथा ४७ में बताई है।

अब ४७वीं गाथा पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

''प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्॥७१॥

जिन सुबुद्धियों को तथा कुबुद्धियों को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ? (वास्तव में उनमें कुछ भी अंतर नहीं है।)''

सुबुद्धि और कुबुद्धि की पर्याय में अंतर है, उनका त्रिकाली स्वभाव तो एकरूप शुद्ध है, उस शुद्धभाव के ऊपर ही दृष्टि कर।

सुबुद्धि अर्थात् सम्यग्दृष्टि; जो जीव वस्तु का स्वरूप यथार्थ समझता है अर्थात् शरीरादि पर हैं, एकसमय का विकार पर्याय में होता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है, विकार के कारण द्रव्यकर्म का बंध होता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध पर्याय में है, शुद्धस्वभाव में ऐसा संबंध नहीं है, मैं तो त्रिकाली ज्ञायक शुद्ध हूँ—ऐसा जिसको भान हुआ है, उसे सुबुद्धि कहते हैं, उसी को सच्ची बुद्धि उत्पन्न हुई है। जीव का मूलस्वभाव-शुद्धभाव तो जैसे का तैसा ही शुद्ध है, वह नया शुद्ध नहीं हुआ है।

कुबुद्धि अर्थात् मिथ्यादृष्टि; जो जीव वस्तु का स्वरूप समझता नहीं और पर से तथा एकसमय के विकार से लाभ मानता है और त्रिकाली स्वभाव को नहीं समझता, वह कुबुद्धि है। उसका त्रिकाली स्वभाव तो जैसे का तैसा शुद्ध पड़ा है।

सुबुद्धि की एकसमय की पर्याय को तथा कुबुद्धि की एकसमय की मिथ्यात्व पर्याय को गौण करके देखा जावे तो दोनों के स्वभाव में कोई भेद नहीं है; एकरूप शुद्ध-भाव पड़ा है। सोने में ताँबे का मिश्रण हो, तब भी सोना तो सोना ही है और ताँबे को उसमें से निकाल देने पर भी सोना तो सोना ही है। उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि—दोनों का स्वभाव तो शुद्ध ही है, उनके स्वभाव में सचमुच कोई अंतर नहीं है।

यहाँ द्रव्यदृष्टि कराते हैं; धर्म प्रगट होने का कारण कौन है ? धर्म अथवा आनंद विकार में से अथवा पर्याय में से नहीं आता, किंतु वस्तुस्वभाव अस्तिरूप है, उसमें से आता है, अत: पर्याय के ऊपर का लक्ष छोड़। अनंतकाल से अज्ञान का सेवन करके सत् का विरोध किया हो तो वह भी पर्याय में ही हुआ है और कोई सिद्ध हुआ हो तो वह भी पर्याय में ही; अत: दोनों ही पर्यायों का लक्ष छोड़कर निगोद और सिद्ध में एकरूप शुद्धभाव पड़ा है, उसके ऊपर दृष्टि कर। शुद्ध कारणस्वभावभाव ही धर्म का कारण है।

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमश: दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादी लक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो॥२१॥

जो द्रव्यों के परिवर्तनरूप है और परिणामादि से लक्षित होता है, वह व्यवहारकाल है; तथा वर्तनालक्षणयुक्त काल निश्चयकाल है।

आत्मा, पुद्गल आदि सभी द्रव्य ध्रुव रहकर अपनी-अपनी अवस्थाओं में परिणमित होते हैं। यदि द्रव्य मात्र कूटस्थ हो जाये तो कार्य (पर्याय) भी न हो, फिर तो सुख-दु:ख का अनुभव भी आत्मा को नहीं हो, परंतु ऐसा नहीं है—क्योंकि प्रत्येक द्रव्य पर्यायों में परिणमित

होता है। इतना ही नहीं, प्रत्येक द्रव्य का अपना-अपना प्रत्येक परिणाम निश्चित है, उसकी स्थिति का माप व्यवहारकाल है। जैसे—वर्ष, महीना, दिन, घंटा, घड़ी आदि।

वर्तनालक्षण का धारक पदार्थ निश्चयकाल है। वे कालाणु असंख्य हैं। कुछ लोग काल को उपचार से मानते हैं—यह बात ठीक नहीं है। जब 'काल' वाचक शब्द है तो वाच्य पदार्थ भी होना चाहिये। जैसे 'गुड़' वाचक शब्द 'गुड़' वाच्यपदार्थ को बताता है, वैसे ही 'काल' वाचक शब्द 'काल' वाच्य पदार्थ को बताता ही है। यदि वास्तव में कालद्रव्य नहीं माना जाये तो वाचक-वाच्य संबंध नहीं रहता है। जब कथन में काल शब्द आता है तो काल पदार्थ भी होना चाहिये, क्योंकि कालद्रव्य सभी द्रव्यों के परिणमन में निमित्त है।

ज्ञान छह द्रव्यों को यथार्थ जानता है। आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, तथा लोकालोक में विद्यमान सभी चेतन-अचेतन द्रव्य ज्ञेय हैं। जगत में जितनी वस्तुयें हैं, उनमें से एक भी कम माने तो ज्ञान की प्रमाणता यथार्थ नहीं रहती है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। संसारदशा में राग-द्वेष पाया जाता है, जिसके कारण अल्पज्ञता रहती है। स्वभाव के आश्रय से राग-द्वेष दूर होता है, वीतरागता और केवलज्ञान भी प्रगट हो जाता है। केवलज्ञान जगत के संपूर्ण पदार्थों को एकसाथ जानता है—यह केवलज्ञान की ही महिमा है।

'आत्मा ज्ञानप्रमाण है'—ऐसा प्रवचनसार में कहा है। जिसप्रकार गुड़ का गुड़पना उसकी डली (आकार विशेष) प्रमाण है, कम-ज्यादा नहीं है; उसीप्रकार आत्मा का ज्ञान आत्मा में ही है, शरीरादिक में नहीं। किसी दूसरे से लाभ माननेवाला भिखारी है। जिसे चिदानंद आत्मा की खबर नहीं उसे परावलंबन रहे बिना नहीं रहता अर्थात् रहता ही है।

ज्ञानस्वभावी आत्मा में सर्वज्ञ होने की सामर्थ्य है। भगवान बनते हैं, जन्मते नहीं; अरहंत भगवान के भी सर्वज्ञता प्रगट होती है, क्योंकि उनमें सर्वज्ञ होने की सामर्थ्य थी। प्रवचनसार में कहा है कि जो जीव अरहंत परमेष्टी के द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्म-सन्मुख होकर जानता है—उसका मोह नष्ट हो जाता है अर्थात् उसे धर्म की प्राप्ति हो जाती है।

अरहंत के स्वरूप को समझकर जीव विचार करता है कि मेरा स्वभाव भी सर्वज्ञ बन सकने का है। राग-द्वेष आदि विभावों में अटकना तथा अल्पज्ञता मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव तो लोकालोक में व्याप्त अनंत जीव, अनंतानंत पुद्गल, एक धर्म, एक अधर्म, एक

आकाश और लोकप्रमाण असंख्य कालाणुओं को जानने का है। जो ऐसा न माने तो पूर्ण विकसित ज्ञानगुण की सामर्थ्य कितनी है—इसकी खबर उसे नहीं है तथा ज्ञानादि अनंत गुणवाले आत्मा की सामर्थ्य का पता भी उसे नहीं है।

जैसे कोई बहुत धनवान होकर भी लोभी व्यक्ति है। वह बाह्य कार्यों में धन न देना पड़े, इसलिये कदाचित् झूठ बोलता है कि मेरे पास थोड़ा धन है। परंतु ऐसा बोलते हुए भी उसका ज्ञान यह बात स्वीकार नहीं करता है। उसके पास जो मूल पूंजी है, उसे अच्छी तरह जानता है। वैसे ही आत्मा के सर्वज्ञता प्रगट होने पर लोकालोक को जानने की सामर्थ्य है, वह थोड़े ज्ञेयों को स्वीकार नहीं करता। ऐसी सर्वज्ञ-शक्ति की प्रतीति जिसको आती है, उसको धर्मदशा प्रगट होती है।

जब लोक में छह द्रव्य हैं तो उन सबकी प्रतीति होनी चाहिये। जो यह कहते हैं कि कालद्रव्य नहीं है तो उन्होंने संपूर्ण ज्ञेयों को स्वीकार नहीं किया। इसप्रकार अपने ज्ञानगुण की सामर्थ्य को नहीं जानते हुए निज आत्मा की सामर्थ्य को भी स्वीकार नहीं किया। तथा आत्मा को जाने बिना अरहंत को भी नहीं जाना।

लोक में अनंत आत्मायें हैं, परंतु कोई कहे कि आत्मा एक है तो उसका ज्ञान सच्चा नहीं है। इसीप्रकार अनंतानंत पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश एक-एक हैं—ऐसा स्वीकारता हुआ भी असंख्य कालाणु हैं और उन्हें स्वीकार न करे अर्थात् कालद्रव्य को न माने तो उसका ज्ञान खोटा ही है, सच्चा नहीं।

भाई! यह बृहद्द्रव्यसंग्रह है, छह द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप इसमें बताया है। छह द्रव्यों को यथार्थतः जाने बिना देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची श्रद्धा नहीं होती है।

आत्मा, पुद्गल आदि द्रव्य ध्रुव रहकर भी परिणमित होते हैं। एकरूप ही रहें तो कार्य नहीं हो सकते। तथा परिणमित होते हुए नित्य (ध्रुव) न रहें तो पदार्थ ही नहीं ठहरता है। अतः प्रत्येक द्रव्य नित्य (ध्रुव) रहकर भी बदलता है, परिणमित होता है—यह व्यवहारकाल है। इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि परिवर्तन तो उस-उस द्रव्य की पर्याय है, यह व्यवहारकाल नहीं। व्यवहारकाल तो परिवर्तन के 'समय' की माप को बतानेवाला है।

वर्तनालक्षणवाला काल निश्चयकाल है। मिसरी की डली (आकार विशेष) की सफेद पर्याय है; उसमें मिसरी पूर्णरूप से आ जाती है। द्रव्य और पर्याय का क्षेत्र एक-सा है।

इनमें आगे-पीछे होने की ताकत नहीं है। जब एक परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में मंदगति से जाये तो एकसमय लगता है—यही काल की पर्याय है। अतः काल की पर्याय है, तो पर्यायवान द्रव्य भी होना चाहिये। लोक के एक प्रदेश में एक कालाणु है, अतः असंख्य प्रदेशों में असंख्य कालाणु हैं।

जिसने कालद्रव्य को नहीं माना उसने संपूर्ण ज्ञेयों को नहीं माना और ज्ञेयों को नहीं मानने से ज्ञेयों को जाननेवाले ज्ञान की पूर्णपर्याय प्रगट करने का पुरुषार्थ जागृत नहीं होता है। तथा 'सभी ज्ञेयों को जाननेवाला मेरा ज्ञान परिपूर्ण है'—ऐसी प्रतीति उसे नहीं आती है। कदाचित् मंदकषाय हो तो पुण्य-परिणाम भी हो जाये, परंतु उसे धर्म अर्थात् आत्मकल्याण की प्राप्ति नहीं होती है।

जिसने कालद्रव्य को माना उसने सभी द्रव्यों को माना। उसे संपूर्ण ज्ञेयों को जाननेवाले ज्ञानगुण की शक्ति का विश्वास आता है। पहले विश्वास नहीं था, बाद में हुआ—यह उसका स्वकाल है, उसमें निमित्तरूप कालाणु है।

अब व्यवहार और निश्चयकाल का विशेष वर्णन करते हैं।

जीव पुद्गल आदि सभी द्रव्यों में पूर्व पर्याय का नाश और नवीन पर्याय का उत्पाद होता है। जैसे—यह कपड़ा नये से पुराना हुआ इसमें नयेपनरूप पर्याय का व्यय और पुरानेपनरूप पर्याय का उत्पाद हुआ। इन्हीं पर्यायों की समय, घड़ी आदि स्थिति को व्यवहारकाल कहते हैं।

इन चावलों के पकने में कितना समय लगेगा ?

दस मिनट।

इस मकान को बने हुये कितने वर्ष हो गये ?

१४ वर्ष।

ऐसे जगत के पदार्थों की स्थिति को व्यवहारकाल कहते हैं। जीव मनुष्यपर्याय में इतने वर्ष रहा—यह व्यवहारकाल है। व्यवहारकाल पर्याय अथवा द्रव्य को नहीं बताता है। पर्याय बदलती है, व्यवहारकाल नहीं; परंतु पर्याय की स्थिति का माप व्यवहारकाल है।

महाविदेहक्षेत्र में इस समय भी जीव मुक्त होकर सिद्धदशा प्राप्त करते हैं। मान लो वहाँ अभी-अभी कोई जीव सिद्धावस्था को प्राप्त हुआ हो तब केवली भगवान से पूछने में आये कि

उनके सिद्ध होने में कितना समय लगा? तब कहने में आया कि अमुल काल लगा, यही व्यवहारकाल है। सिद्ध की पर्याय व्यवहारकाल नहीं, परंतु उसकी स्थिति का माप व्यवहारकाल है।

प्रत्येक वस्तु अपने-अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। प्रत्येक आत्मा अनंत गुणों का पिंडस्वरूप द्रव्य है, असंख्यप्रदेशी उसका क्षेत्र है, प्रतिसमय की पर्याय उसका स्वकाल है, तथा ज्ञानादिगुण उसके भाव हैं।

प्रतिसमय की पर्याय निश्चयकाल है कि व्यवहारकाल?

वह न निश्चयकाल है न ही व्यवहारकाल। वह तो स्वयं पर्याय है, पर्याय की स्थिति आंकना काल है, और वह व्यवहारकाल है। इसे जीव, पुद्गल आदि द्रव्यों की परिणामरूप पर्याय से जाना जा सकता है। गाय दुहने का समय हुआ, बहुत पहले ऐसा बनाव बना था, यह बात अभी की है, यह कल सवेरे की है, आदि—इसप्रकार 'समय' व्यवहारकाल जाना जाता है।

अब निश्चयकाल जो कि द्रव्यस्वरूप है, उसका कथन करते हैं। प्रत्येक पदार्थ जीव हो या अजीव स्वयं अपने उपादान कारण से परिणमता है; पर के कारण नहीं परिणमता।

यहाँ कोई कहता है कि सिद्धजीवों को काल के कारण परिणमन करना पड़ता है—उसकी यह बात ठीक नहीं है—सभी सिद्धजीव अपने-अपने कारण से परिणमन करते हैं। संसारीजीव सम्यग्दर्शन भी अपने कारण से प्रगट करते हैं, शब्दों का परिणमन भी अपने कारण से होता है; निमित्तादिक परिणमन नहीं कराते। निमित्त होने पर उपादान में कार्य होता है, ऐसा नहीं है। निमित्त और उपादान के बीच में कालभेद नहीं है। ''प्रत्येक पदार्थ जब स्वयं परिणमन करता है, तब परिणमन में अनुकूलता का आरोप जिस पर आये वह निमित्त है।''

अज्ञानी जीव कर्मों को प्रेरक कहकर कहता है कि वे आत्मा में विकार उत्पन्न कराते हैं, पर यह उसकी भूल है। निगोद से लेकर सिद्ध अवस्था तक के सभी जीव स्वयं अपनी उपादान शक्ति से परिणमित होते हैं, कर्म आदि कोई भी परिणमन नहीं कराते, न ही विकार उत्पन्न कराते हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये द्रव्य भी अपनी-अपनी उपादान शक्ति से परिणमित होते हैं।

अज्ञानी जीवों को द्रव्य और पर्याय की स्वतंत्रता की बात समझ में नहीं आती है। इसलिये ही वे मानते हैं कि अन्य के कारण से कार्य होता है।

'मैं करूँ, मैं करूँ'—यह अज्ञानता का बोझा जीव ढ़ो रहा है। जैसे—गाड़ी के नीचे चलनेवाला कुत्ता मानता है कि गाड़ी के बोझ को मैं ढ़ो रहा हूँ।

यहाँ कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने उपादान कारण से स्वयं परिणमित होता है। तथा स्वयं परिणमित करते हुये पदार्थों को वर्तना सहकारी कारण है। वर्तनालक्षण का धारक पदार्थ कालाणु निश्चयकाल है। जिस रीति से कुम्हार के चक्र में नीचे की शिला सहकारी कारण है, चक्र स्वयमेव चलता है, हाथ व लकड़ी आदि से नहीं चलता है—शिला, लकड़ी, हाथ आदि केवल निमित्त हैं। जिसप्रकार शीतऋतु में विद्यार्थियों के पढ़ने में प्रकाश सहकारी कारण है; प्रत्येक विद्यार्थी स्वयं ही अपनी प्रतिभा से जानते हैं, पढ़ते हैं, प्रकाश पढ़ने में उनकी कुछ भी मदद नहीं करता है—यदि मदद करता तो सभी विद्यार्थियों को एक जैसा जानना या पढ़ना चाहिये। परंतु ऐसा नहीं होता है। जो पढ़कर स्वयं जानता है, उसमें प्रकाश निमित्त है। वैसे ही सभी द्रव्य अपने-अपने कारण से परिणमित होते हैं, उनमें वर्तनालक्षणवाला कालाणु निमित्त है। काल किसी को भी जबरदस्ती परिणमन नहीं कराता।

इसप्रकार कालाणुरूप निश्चयकाल सिद्ध होता है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है। वह स्वयं ही वर्तमान में संसार अवस्था में अर्थात् अपूर्ण अवस्था में है, अपने ज्ञानस्वभाव का अवलंबन लेने से अपूर्णता का अभाव होता है, इसलिये आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान-आचरण करना चाहिये—चारित्र अंगीकार कर स्वलीनतापूर्वक वीतरागता प्रगट कर सर्वज्ञ हो जाना चाहिये। सर्वज्ञ के ज्ञान में सभी पदार्थ स्पष्ट प्रतिभासित होते हैं। अनादिकाल से जीव किस तरह भव-भ्रमण कर रहा है तथा कैसे भव से पार हो सकता है—इत्यादि सर्वज्ञ के ज्ञान में न आता हो तो संसार से पार होने का वास्तविक मार्ग कोई नहीं बता पाता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग है, संसार से पार उतरने का मार्ग है, इसलिये तीन लोक का जाननहार सर्वज्ञ भी होना चाहिये।

जिसप्रकार कोई जीव अरहंतपना प्राप्त कर शीघ्र ही सिद्धदशा प्राप्त कर ले तो उसके ज्ञान में क्या आया इसकी जानकारी अन्य संसारी जीवों को नहीं हो सकती; उसीप्रकार किन्हीं सर्वज्ञ परमात्मा को वाणी का योग नहीं हो तो उनके द्वारा हम द्रव्य का स्वरूप नहीं समझ सकते हैं। फिर भी ज्ञान ज्ञान का कारण और वाणी वाणी का कारण है, ऐसा होने पर भी वस्तु के स्वरूप को बतानेवाली वाणी का योग तीर्थंकरों को होता है।

तीर्थंकर की वाणी के अनुसार वस्तुस्वरूप से मिलान कर शास्त्रों की समीचीनता-असमीचीनता का निर्णय करना चाहिये, क्योंकि भगवान के नाम पर अधर्मी लोगों ने खोटे शास्त्र लिख दिये हैं।

यह द्रव्यसंग्रह है, इसमें वीतरागवाणी के अनुसार छह दव्यों का स्वरूप बताया है। यहाँ कालद्रव्य की बात चलती है। श्वेताम्बर संप्रदाय कालद्रव्य को नहीं मानता। अतः न्याय से, तर्क से काल से अस्तित्व को सिद्ध किया है। व्यवहारकाल परिणाम की स्थिति के माप से जाना जाता है। वर्तमानलक्षण वाला कालाणु निश्चयकाल है।

शंका :- समय, घड़ी, दिवस, रात्रि आदि ही निश्चयकाल है, इनसे भिन्न कालाणुरूप निश्चयकाल नहीं है, क्योंकि वह हमारे देखने में नहीं आता है।

उत्तर :- जीव भी अरूपी होने से देखने में नहीं आता तो क्या उसको भी नहीं माना जाये, यह बात न्यायसंगत नहीं है। समय, घड़ी, दिवस आदि काल के सूचक हैं; जीव, पुद्गल के नहीं। क्योंकि समय आदि पर्यायें काल की ही पर्यायें हैं, अन्य की नहीं।

यहाँ कोई **प्रश्न** पूछता है कि—'समय' काल की पर्याय किस प्रकार है ?

समाधान :- समय 'काल' की ही पर्याय है, क्योंकि पर्यायों के उत्पाद-व्यय पाया जाता है। समय, घड़ी आदि उत्पाद-व्यय को बतानेवाले होने से पर्याय को सूचित करते हैं, द्रव्य को नहीं; क्योंकि द्रव्य में उत्पाद-व्यय नहीं हो सकता है तथा पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती है। जैसे—ज्ञान की पर्याय ज्ञानगुण बिना और ज्ञानगुण आत्मा के आधार बिना नहीं हो सकता है। इसलिये पर्याय यदि है तो द्रव्य के आधार पर होना चाहिये—ऐसा प्रतिफलित होता है। इसप्रकार समय, घड़ी आदि पर्यायों को माना जाता है तो उनके आधारस्वरूप कालद्रव्य को भी मानना पड़ेगा।

जिसप्रकार ईंधन, अग्नि आदि सहकारी कारण होने पर भी पकते हुये चावलों का उपादान कारण चावल स्वयं ही हैं। यदि मूलकारण अग्नि अथवा ईंधन हो तो अग्नि या ईंधन की पर्याय चावलों में आ जाना चाहिये—परंतु ऐसा नहीं होता है। तथा कुम्हार चाक आदि बहिरंग निमित्त होने पर घड़ा बनता है। यहाँ घड़ा बनने का उपादान कारण मिट्टी है, कुम्हार-चाक आदि नहीं। यदि कुम्हार-चाक आदि उपादान कारण हों तो कुम्हार-चाक आदि के गुण

घड़े में होना चाहिये—परंतु ऐसा देखा नहीं जाता है। मिट्टी का मूलगुण घड़े में आता है, इसलिये मिट्टी ही उपादान कारण है।

उसीप्रकार समय आदि पर्यायों की उपादान कारण कालद्रव्य है। यदि समयरूपी पर्याय जीव और पुद्गल की मानी जाये, तो जीव तथा पुद्गल के गुण समय-घड़ी आदि पर्यायों में आ जाना चाहिये—परंतु ऐसा नहीं है। चावल में चावल के ही गुण आते हैं, अग्नि आदि के नहीं। घड़े में मिट्टी के गुण ही आते हैं, कुम्हार आदि के नहीं। इसीप्रकार समय में काल के गुण ही आते हैं, जीव पुद्गल के नहीं। अतः 'समय' पर्याय से कालद्रव्य सिद्ध हुआ। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन के लिये खास प्रकार की पात्रता का लक्षण क्या ?

उत्तर- जिसको अपने आत्मा का हित करने के लिये अंदर से वास्तविक लगन हो, आत्मा को प्राप्त करने की तड़फड़ाहट हो, दरकार हो, वास्तविक छटपटाहट हो, वह कहीं भी अटके बिना—रुके बिना अपना कार्य करेगा ही।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन नहीं पाने में भगवान की भूल है अथवा आगमज्ञान की ?

उत्तर- अपनी भूल है। स्व-तरफ नहीं झुककर, पर-तरफ रुकता है—यही भूल है। होती शक्ति को अनहोती कर दिया, अर्थात् प्राप्त शक्ति को अप्राप्त जैसा समझ लिया, अपनी त्रिकाली शक्ति के अस्तित्व को नहीं पहचाना—यही अपनी भूल है। त्रिकाली वर्तमान शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार कर ले—देख ले तो भूल टल जाये।

प्रश्न– तत्त्वविचार तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का निमित्त है। उसका मूल साधन क्या है ?

उत्तर– मूल साधन अंदर में आत्मा है, वहाँ दृष्टि का जोर जावे और 'एकदम पूर्ण परमात्मा ही हूँ'—ऐसा विश्वास आवे, जोर आवे और दृष्टि अंतर में ढले तब सम्यग्दर्शन होता है। उससे प्रथम तत्त्व का विचार होता है, उसकी भी रुचि छोड़कर जब अंदर में जाता है, तब उस विचार तो निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न– सूक्ष्म उपयोग का अर्थ क्या ?

उत्तर– जिस उपयोग में आत्मवस्तु पकड़ने में आवे वह उपयोग सूक्ष्म है। राग को पकड़नेवाला उपयोग स्थूल है।

प्रश्न– महाव्रत के भाव भले ही बंध के कारण हों, परंतु मुनिराज के वे सहज आते हैं, फिर उनका निषेध कैसे ?

उत्तर– महाव्रत के भाव मुनिराज को भले ही सहज आते हों, तथापि वे निषेधने योग्य ही हैं।

प्रश्न– महाव्रत तो महापुरुष पालन करते हैं, इसीलिए उन्हें महाव्रत कहते हैं, उनका निषेध कैसे होगा ?

उत्तर– महापुरुष अंतरस्वरूप में स्थिर हुए हैं, उसके साथ व्रत के परिणाम आते हैं इसलिए उन्हें महाव्रत कहते हैं, परंतु हैं तो वे बंध के ही कारण–अतः उनका निषेध किया गया है। समयसार कलश के श्लोक नं० १०८ की टीका में कहा है कि..... व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, अतः विषय–कषाय के समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है।

प्रश्न– मुनिपना में व्रत–तप–शीलादि आचरण करना कहा है। जो कर सकते हैं, उसे तो बंधनरूप और संसार का कारण कहा, तो फिर मुनियों को शरण किसका रहा ? मुनिपना किसके आश्रय पलेगा ?

उत्तर– व्रत–तप–शीलादि शुभाचरणरूप कर्म का निषेध करते हुये, निष्कर्म अवस्थारूप प्रवर्तते हुए, मुनि कहीं अशरणरूप नहीं हैं; ज्ञानस्वरूप में आचरण करनेवाले मुनि को ज्ञान ही शरणरूप है। ज्ञान का शरण लेते हुए मुनिराज परम अमृत का आस्वादन करते हैं, अतः शुभाचरण के निषेधक मुनियों को ज्ञान ही परम शरणरूप है।

प्रश्न– श्री कुंदकुंदाचार्यदेव ने भी तो महाव्रतों को पाला था ?

उत्तर– श्री कुंदकुंदाचार्यदेव ने महाव्रतों को पाला नहीं था, किंतु महाव्रतों के विकल्प आये थे उन्हें जाना था, उन विकल्पों का उनके स्वामित्व नहीं था, उन्हें अपनत्वपने जानते नहीं थे, मात्र परज्ञेयपने जानते थे।

प्रश्न– धर्म करने में द्रव्य-गुण-पर्याय को समझने की क्या आवश्यकता है? दान-व्रत-तप करने से धर्म तो होता ही है न?

उत्तर– दान-व्रत-तप करे और उस शुभराग से लाभ माने—धर्म माने तो मिथ्यात्व का महान पाप बँधता है। व्रतादि के परिणाम तो रागरूप हैं, बंधरूप हैं; और धर्म तो वीतराग परिणाम है। आत्मा आनंदस्वरूप महाप्रभु है, उसे द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप से पहिचाने तो राग से भिन्न पड़कर चैतन्यस्वरूप आत्मा में एकाग्रता हो और धर्म हो।

प्रश्न– आप शुभभाव को छुड़ाते हैं न?

उत्तर– अनादिकाल से चली आ रही शुभभाव में हितबुद्धि छुड़ाते हैं। पहले शुभराग में आदरबुद्धि छुड़ाते हैं, उसके बाद अस्थिरता से भी छुड़ाते हैं। शुभराग आवेगा तो अवश्य, क्योंकि शुद्धोपयोग बिना शुभराग छूटता नहीं; फिर भी उसमें से हितबुद्धि छुड़ाते हैं, शुभराग से अथवा शुभ करते-करते आत्मकल्याण हो जावेगा—ऐसी मान्यता छुड़ाते हैं।

प्रश्न– पर्याय को दूसरे द्रव्य का सहारा नहीं है, तो क्या अपने द्रव्य का भी सहारा नहीं है?

उत्तर– पर्याय अपने षट्कारक से स्वतंत्र है।

प्रश्न– पर्याय तो पामर है न?

उत्तर– पर्याय पामर नहीं है, वह तो संपूर्ण द्रव्य को स्वीकारती है, उसे पामर कैसे कहें? पर्याय में महासामर्थ्य है, संपूर्ण द्रव्य को स्पर्श किये बिना उसे स्वीकारती है। ज्ञान की एक पर्याय में इतनी शक्ति है कि छहों द्रव्यों को जान ले। इसकी शक्ति की अलौकिक बात है।

समाचार दर्शन

पूज्य स्वामीजी का नैरोबी के लिये मंगल विहार

बम्बई (महा०) :- संपूर्ण देश में दिगंबर जैनधर्म का ध्वज लहरानेवाले पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ने १ जनवरी, १९८० को यहाँ से नैरोबी (अफ्रीका) के लिये प्रस्थान किया। हवाई अड्डे पर लगभग ५०० व्यक्तियों ने उनको भावभीनी विदाई दी वहाँ २ जनवरी से २२ जनवरी तक उनके आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा दिगंबर जैनशासन की अपूर्व प्रभावना होगी।

स्मरण रहे कि अफ्रीका महाद्वीप के केन्या प्रदेश की राजधानी नैरोबी में व्यापार के दृष्टिकोण से भारत के ही हजारों भाई रहते हैं, इनमें से दो हजार घर श्वेतांबर भाइयों के हैं और करीब ६० घर के भाई पूज्य गुरुदेव की वाणी से प्रभावित होकर, दिगंबर जैनधर्म का कल्याणकारी स्वरूप समझकर, दिगंबरत्व के श्रद्धालु हो गये हैं। वहाँ अभी तक कोई जिनमंदिर नहीं था, एक छोटे से चैत्यालय में ही श्रद्धालुजन प्रतिदिन जिनेन्द्रदर्शन, पूजन, स्वाध्याय करते रहते थे।

गतवर्ष पंडित लालचंदभाई मोदी, राजकोट एवं पंडित बाबूभाई मेहता, फतेपुर के कर-कमलों द्वारा वहाँ दिगंबर जिनमंदिर का शिलान्यास हुआ था, जिसका निर्माणकार्य पूर्ण हो चुका है। मंदिर निर्माण हेतु संगमरमर एवं उसमें विराजमान करने हेतु दिगंबर जिनबिम्ब जयपुर से ले जाए गए हैं।

दिनांक ११ जनवरी से १९ जनवरी तक श्री दिगंबर जिनबिंब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया जा रहा है, जिसमें ३ फुट की भगवान महावीर की, २.५-२.५ फुट की भगवान शांतिनाथ और भगवान पार्श्वनाथ की, ५-५ इंच की चौबीस तीर्थंकरों की तथा ९ इंच की आदिनाथ भगवान की पद्मासन प्रतिमाऐं प्रतिष्ठित की जाऐंगी, तत्पश्चात् उन्हें वहीं विराजमान किया जायेगा।

महोत्सव में भाग लेने हेतु सर्वश्री पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा आदि अनेक विद्वान २८ दिसंबर को नैरोबी के लिए प्रस्थान कर चुके हैं। पंचकल्याणक महोत्सव के प्रतिष्ठाचार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियर है। इसके अतिरिक्त देश के कोने-कोने से लगभग ४०० मुमुक्षु भाई-बहिन उक्त

महोत्सव में सम्मिलित हो रहे हैं। ब्रह्मचारी जतीशचंदजी सनावद एवं ब्रह्मचारी श्रीचंदजी सोनगढ़, पंचकल्याणक की व्यवस्था हेतु ९ दिसंबर को ही प्रस्थान कर चुके हैं।

नैरोबी के अतिरिक्त मोम्बासा आदि नगरों में भी पूज्य स्वामीजी के मंगल-प्रवचनों का आयोजन किया गया है। समारोह के विस्तृत समाचार अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल को भावभीनी विदाई

जयपुर प्रिंटर्स द्वारा नैरोबी (अफ्रीका) में आयोजित दिगंबर जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में सम्मिलित होने हेतु जानेवाले डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं श्री सोहनलालजी जैन (मैसर्स-जयपुर प्रिंटर्स) को जयपुर प्रिंटर्स परिवार के शताधिक सदस्यों ने २२ दिसंबर, १९७९ को आयोजित समारोह में विदाई देते हुए हार्दिक शुभकामनाऐं व्यक्त कीं। इस अवसर पर डॉ० भारिल्लजी ने भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित 'अहिंसा' की व्याख्या करते हुए उसे यथासंभव जीवन में उतारने की प्रेरणा दी।

टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय द्वारा २३ दिसंबर, ७९ को रात्रि में आयोजित सभा में महाविद्यालय के छात्रों एवं कार्यालय कार्यकर्ताओं ने डॉ० भारिल्लजी की विदेश यात्रा के प्रति अपनी शुभकामनाऐं व्यक्त कीं। इस अवसर पर अनेक छात्रों ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि—पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा विदेश में जैन शासन की प्रभावना का यह अध्याय जैन समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जावेगा। उनकी वाणी के प्रताप से न केवल भारत में अपितु विदेशों में धर्मप्रभावना का यह मंगल शुभारंभ है। डॉ० साहब की मौलिक चिंतन-प्रतिभा एवं रोचक प्रवचनशैली का पूज्य स्वामीजी द्वारा हो रही धर्मप्रभावना में महत्त्वपूर्ण योगदान है। २४ दिसंबर को प्रातः १० बजे रेलवे स्टेशन पर सैकड़ों परिचितजनों ने उन्हें हार्दिक शुभकामनाओं सहित विदा किया। — अभय जैन

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा धर्मप्रभावना

दिनांक ५-१२-७९ से १८-१२-७९ तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के गुजरात प्रांत के अहमदाबाद, सागोदा, दहेगाँव, रखियाल, खानपुर, पाटनकुआ, तलोद, उजेडिया, प्रांतिज, ओराण और छाला में आध्यात्मिक प्रवचनों का विशेष आयोजन किया गया। तीनों समय हुए आपके प्रवचनों से सभी स्थानों पर समाज ने अच्छा धर्मलाभ लिया। इस अवसर पर

कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के लिए ७७,०९०) नगद प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त १२,२११) के नए वचन प्राप्त हुए, जिनमें से ८,८५५) की राशि नगद प्राप्त हुई। पंडित रमणभाई रखियालवाले भी साथ थे, उनके भी प्रवचन हुए। **— माणिकलाल आर. गाँधी**

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन द्वारा नैतिक शिक्षण का सघन अभियान

जयपुर :- १ जनवरी से ३१ जनवरी ८० तक एक माह के लिये अ०भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा जयपुर नगर के जैन समाज द्वारा संचालित १ कॉलेज, ३ हायर सेकेण्ड्री एवं ८ मिडिल तथा प्राइमरी स्कूलों में वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड के पाठ्यक्रम की नैतिक शिक्षण की कक्षाऐं प्रारंभ की जा रही हैं। कक्षाओं में बालबोध एवं वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं का अध्ययन कराया जावेगा। पश्चात् २ फरवरी ८० से होनेवाली वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की वार्षिक परीक्षाओं में इनकी भी परीक्षा ली जावेगी तथा प्रोत्साहन हेतु छात्रों को पुरस्कृत किया जायेगा। परीक्षाबोर्ड के प्रबंधक पंडित हेमचंदजी 'चेतन' एवं टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय के छात्र पंडित अभयकुमारजी शास्त्री (द्वितीय वर्ष) ने स्थानीय शालाओं के व्यवस्थापकों तथा प्राचार्यों से संपर्क साधकर उक्त योजना बनाई है।

स्मरण रहे यह टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय के छात्रों का द्वितीय प्रयास है। गतवर्ष इसीप्रकार का एक अनोखा शिविर लगाया गया था जिसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। गतवर्ष ८ विद्यालयों में ३०९ विद्यार्थियों ने भाग लेकर तत्त्वज्ञान की एवं सदाचार की शिक्षा प्राप्त की थी। विद्यालयों के प्राचार्यों ने अपने-अपने विद्यालयों के समयचक्र के प्रत्येक प्रहर में से ५-५ मिनिट कम करके १ पीरियड नैतिक शिक्षण के लिये देकर जो सुविधा प्रदान की है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अ० भा० युवा फैडरेशन की शाखाओं द्वारा भी अपने-अपने नगर में इसी प्रकार के आयोजनों द्वारा नैतिक शिक्षा का प्रसार करके बालकों में सदाचार के संस्कार डाले जा सकते हैं। सभी शाखाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने-अपने नगर में ऐसे आयोजन करके १ माह तक प्रत्येक कक्षा में बालबोध पाठमालाओं का एक-एक भाग पढ़ाकर छात्रों को परीक्षा में सम्मिलित करें।

इस कार्यक्रम को लागू करनेवाली शाखाओं से अनुरोध है कि वे शीघ्र ही जयपुर कार्यालय से प्रश्न-पत्र आदि आवश्यक सामग्री मँगा लें। तथा सादे कागज पर छात्र का नाम, उम्र, पिता का नाम, स्थान एवं जाति लिखकर भेज दें ताकि यहीं परीक्षा फार्म भरा जा सके।

— अखिल बंसल

फैडरेशन की कोटा शाखा का अधिवेशन

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की कोटा शाखा का वार्षिक अधिवेशन २ एवं ३ फरवरी, ८० को विविध कार्यक्रमों के साथ आयोजित किया गया है। इस अवसर पर समाज के अनेक गणमान्य महानुभाव पधार रहे हैं। स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

— राजेश सोगानी

बम्बई में डॉ० भारिल्ल के प्रवचनों का आयोजन

बम्बई :- पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में सम्मिलित होने हेतु नैरोबी जाने के लिये डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल दिनांक २५-१२-७९ को यहाँ पधारे। इस अवसर पर मुम्बादेवी स्थित श्री सीमंधर जिनालय में प्रतिदिन दोनों समय समयसार गाथा १८९ पर आपके प्रवचन हुये, जिनसे सारी समाज लाभान्वित हुई। आपने तारीख २७ की रात्रि को नैरोबी के लिये प्रस्थान किया।

— बसंतभाई दोशी

रखियाल तथा तलोद की पाठशालाओं का निरीक्षण

दिनांक ९-१२-७९ से १५-१२-७९ तक पंडित ज्ञानचंदजी ने रखियाल तथा तलोद की पाठशालाओं का निरीक्षण किया गया तथा बालकों को पढ़ने हेतु प्रोत्साहित किया। पंडित रमणभाई रखियाल तथा पंडित बाबूभाई नाथाभाई फतेपुरवालों ने शिक्षकों तथा बालकों को संबोधित किया। सभी बालकों को मिष्ठान्न वितरण किया गया। दोनों स्थानों पर युवा फैडरेशन के सदस्यों ने प्रवचनों में उत्साहपूर्वक भाग लिया तथा शिक्षण-शिविर लगाने की मांग की।

— अमृतलाल सिंघवी

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के ऑनरेरी निरीक्षक श्री मांगीलालजी 'अगर', एम.ए., बी.एड., उदयपुरवालों ने दिनांक २७ अक्टूबर, १ व १२ नवंबर, तथा २ दिसंबर १९७९ को भीलवाड़ा तथा उदयपुर जिलों के शाहपुरा, भीलवाड़ा, लकड़वास, सेमारी

(दो पाठशालाएँ), टोकर, कल्याणपुरा तथा खैरवाड़ा में चल रही पाठमालाओं का निरीक्षण किया।

खैरवाड़ा (उदयपुर) में नवीन पाठशाला प्रारंभ हुई है, जिसमें श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाना स्वीकृत किया गया। पाठशाला के स्थायित्व के लिये ५०००) पाँच हजार रुपये एकत्रित किये जा चुके हैं।

समिति के निरीक्षक पंडित रमेशचंदजी जैन इटावावालों ने ९ से ३१ दिसंबर, १९७९ तक आगरा (बेलनगंज), ऐत्मादपुर, शिकोहाबाद, एटा, भोगाँव, करहल, जसवंतनगर, गोरमी, पोरसा, अमायन, अम्बाह तथा मगरौनी में चल रही वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का निरीक्षण किया। सभी पाठशालायें २, ४ व ५ फरवरी, १९८० को होनेवाली परीक्षाओं की तैयारी में संलग्न हैं। निरीक्षक महोदय के सुझाव एवं प्रेरणा से पाठशालाओं के संचालन में विशेष गति आई है। **— मंत्रा**

बण्डाबेलई (म.प्र.) :- श्री कपूरचंदजी भायजी के मार्ग-दर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गई। सर्वसम्मति से कार्यकारिणी का गठन किया गया। **— नाथूराम जैन**

पथरिया (म०प्र०) :- ३१ अक्टूबर से ६ नवंबर तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले पधारे। तीनों समय आपकी कक्षाऐं आयोजित की गई, जिससे समाज ने लाभ लिया। **— कुंदनलाल जैन**

आवश्यक सूचनाऐं

(१) श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का पंचवर्षीय विवरण सभी दानदाताओं एवं सलाहकार मंडल के सदस्यों को भेजा जा चुका है। यदि किसी सज्जन को न मिला हो तो पूरा पता लिखकर पंडित टोडरमल स्मारक भवन, ए-४ बापूनगर, जयपुर ३०२००४ से मंगा लेवें। **— मंत्री**

(२) श्री वी० वि० विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की २, ४ व ५ फरवरी, १९८० को होनेवाली परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र भेजे हा रहे हैं, जिन्हें २५ जनवरी तक न मिलें वे तुरंत सूचित करें।

रोल नंबर, परीक्षा कार्यक्रम इत्यादि सामग्री भेजी जा चुकी है। कृपया प्राप्ति की सूचना अवश्य देवें।

— हेमचंद जैन 'चेतन'

आवश्यकता है :- एक ऐसे कर्मचारी की जो वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, भावनगर के ऑफिस का कार्य भलीभाँति सम्हाल सके। हिंदी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा की सामान्य जानकारी तथा अकाउण्ट का कार्य जानना आवश्यक है। अनुभवी व्यक्ति को प्राथमिकता।

— ५८८, पाटनी रोड, लोडावाला चाल, भावनगर (गुजरात)

आवश्यकता है :- एक ऐसे विद्वान-अध्यापक की जो स्थानीय पाठशाला के बच्चों को धार्मिक शिक्षा दे सके तथा प्रवचन का कार्य भी कर सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर से प्रशिक्षण-प्राप्त अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी।

— सम्पर्क करें : गेंदालाल सर्राफ, मु०पो० चंदेरी (गुना) म०प्र०

नए प्रकाशन

हिन्दी

* क्रमबद्धपर्याय मूल्य सादी : २.५०, पक्की जिल्द : ३.५०, प्लास्टिक कवर सहित : ४.५०

नाटक समयसार	: ७.००	पुरुषार्थसिद्धयुपाय	: ५.००
मुक्ति का मार्ग	: १.००	प्रवचन परमागम	: २.५०
धर्म की क्रिया	: २.००	वीतराग-विज्ञान, भाग २	: १.७५
लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका	: ०.५०	(छहढाला प्रवचन)	

गुजराती

* सत्य की खोज भाग १	: २.००	* धर्म के दशलक्षण	: ४.००
समयसार	: १५.००	द्रव्यदृष्टिप्रकाश, भाग ३	: ४.५०

अंग्रेजी

A Short Reder To Jain Doctrines	:	75 Paise
* Tirthankar Bhagwan Mahavir	:	40 Paise
* Know Thyself	:	40 Paise

* चिह्नित पुस्तकों के लेखक डॉ० हुकमचंद भारिल्ल हैं।

पाठकों के पत्र

इंदौर (म०प्र०) से श्री कमलकुमारजी जैन लिखते हैं :-

'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन' के अंतर्गत पूर्व के लेखों में अव्यवस्थितपना भी एक निश्चित व्यवस्थित-क्रम के अनुसार ही होता है, पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। घटनाओं को तटस्थ रूप से देखने, समझने का बल मिलता है। कार्य होने या न होने का जो दोष पर-पदार्थों (चेतन या अचेतन निमित्तों) पर डालने की भ्रमित बुद्धि है, वह दूर होती है।

'क्रमबद्धपर्याय' का चिंतन राग-द्वेष से रहित ऐसे चैतन्यपुरुषार्थ को जगाता है जिससे कि प्रतिकूलता या अनुकूलता में, वैभव में या रंकपने में, निर्मल समता परिणाम पर्याय में अनुभव हो सके, मात्र अपने पदार्थ पर ही दृष्टि जाती है ठहरने के लिए। डर यही है कि इस 'क्रमबद्धपर्याय' को ठीक से न समझकर समाज इसे एकांत 'नियतवाद' न समझे। वैसे 'नियतवाद' के रूप में समझा जाता है तो वह भी 'क्रमबद्धपर्याय' के अंतर्गत ही होगा, अन्यथा नहीं।

नवंबर के आत्मधर्म में भजन भी 'क्रमबद्धपर्याय' के दर्शन की पुष्टि करता है। समयसार, नियमसार व द्रव्यसंग्रह की गाथाओं का खुलासा बहुत ही उत्तम हो रहा है।

दलपतपुर (म०प्र०) से श्री विनोदकुमारजी मोदी लिखते हैं :-

आत्मज्ञान करानेवाला अलौकिक पत्र आत्मधर्म मिला। आत्मधर्म अशांति में शांति, आकुलता में निराकुलता, अंधेरे में उजाले की भाँति स्वत: मार्गदर्शन देता है। क्रमबद्धपर्याय के लेख प्रमाद हटाकर निरंतर पुरुषार्थ करने के लिये प्रेरित करते हैं। अशांतिमय जीवन में यह पत्र शांति और आनंद का अमृतरस वर्षा रहा है।

गुना (म०प्र०) से श्री सुगनचंदजी जैन 'बंधु' लिखते हैं :-

'क्रमबद्धपर्याय' संपादकीय पढ़ते ही गद्‌गद् हो गया। मैंने पहले भी आपके लेख पढ़े, पर 'क्रमबद्धपर्याय' के इन लेखों ने तो वास्तव में संजीवनी का काम किया है। पूज्य स्वामीजी का लेख 'अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती' पढ़कर तो मैं रोमांचित हो उठा।

जयपुर (राज०) से श्री महावीरप्रसादजी जैन, (कुलपति सचिवालय) लिखते हैं :-

आत्मधर्म की महान उपयोगिता के विषय में लिखने के लिये शब्द-संकलन संभव नहीं है। शैली और भाव आपकी स्वयं की विशेषता का प्रतीक है। परिवार की स्त्रियों एवं बच्चों के लिये आत्मधर्म की उपयोगिता और आकर्षण बढ़ाने के लिये मेरा सुझाव है कि इसमें एक स्तंभ पौराणिक कक्षाओं का बोध कथाओं का और जोड़ दिया जाए, जिससे जैनधर्म के गौरवमय इतिहास एवं हमारे महापुरुषों के जीवनवृत्त का ज्ञान भी पाठकों को हो सकें।

उज्जैन (म०प्र०) से श्री पांडे परमेष्ठीदासजी जैन लिखते हैं:-

'क्रमबद्धपर्याय' मैंने यह विषय समझ के परे समझकर छोड़ दिया था। उसमें सदैव यही जान पड़ा कि पुरुषार्थ को धक्का दिया जा रहा है। परंतु जब से इस विषय पर डॉ० भारिल्लजी के संपादकीय लेख पढ़े सब समझ में आने लगा। अब तो आगे पढ़ने की अभिलाषा बनी रहती है।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४ (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा-कार्यक्रम सन् १९८०

दिन व दिनांक	नाम ग्रंथ
शनिवार २ फरवरी, १९८०	१. बालबोध पाठामाला भाग १ (बा० प्रथम खंड) मौखिक २. जैन बालपोथी भाग १ (मौखिक) ३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १ (प्र० प्रथम खंड) ४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ ५. छहढाला (पूर्ण) ६. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध ७. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) ८. जैन सिद्धांत प्रवेशिका (बरैयाजी) ९. विशारद द्वितीय खंड (प्रथम वर्ष)
सोमवार ४ फरवरी, १९८०	१. बालबोध पाठमाला भाग २ (बा० द्वितीय खंड) मौखिक २. जैन बालपोथी भाग २ (मौखिक) ३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग २ (प्र० द्वितीय खंड) ४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ ५. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) ६. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध ७. लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका (सोनगढ़) ८. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) ९. विशारद प्रथम खंड (प्रथम वर्ष) १०. विशारद द्वितीय खंड (द्वितीय वर्ष)
मंगलवार ५ फरवरी, १९८०	१. बालबोध पाठमाला भाग ३ (बा० तृतीय खंड) मौखिक २. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३ (प्र० तृतीय खंड) ३. रत्नकरंड श्रावकाचार (पूर्ण) ४. पुरुषार्थसिद्धयुपाय (पूर्ण) ५. विशारद प्रथम खंड (द्वितीय वर्ष)

नोट - (1) सुविधानुसार परीक्षा का समय सुबह ९ बजे से ५ बजे तक के बीच में कभी भी सेट किया जा सकता है।

(2) जहाँ एक से अधिक केंद्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।

(3) यदि किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४